Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतराग विज्ञान

भाग–६

छहढाला की छठवी ढाल पर

प्रवचन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतराग-विज्ञान

भाग-6

(कविवर पण्डित दौलतरामजी विरचित छहढाला की
छठवीं ढाल पर पूज्यश्री कानजीस्वामी के प्रवचन)

सम्पादक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

एम.ए., शास्त्री, न्यायतीर्थ, पी-एच.डी.

अनुवादक :

पण्डित अभयकुमार जैन

शास्त्री, जैन दर्शनाचार्य, एम. कॉम.

प्रकाशक :

पूज्यश्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली

एवं

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रथम संस्करण : 3 हजार
(27 मई, 2001)
श्रुत पंचमी पर्व

मूल्य : **छह रुपए**

टाइपसैटिंग :
प्रिन्टोमैटिक्स
दुर्गापुरा, जयपुर–302018
फोन : 722274, 721819

मुद्रक :
जे. के. ऑफसैट प्रिन्टर्स
जामा मस्जिद
दिल्ली

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Thanks & Our Request

This shastra has been kindly donated by Dakshaben Sanghvi, Geneva, Switzerland who has paid for it to be "electronised" and made available on the internet.

Our request to you:

1) Great care has been taken to ensure this electronic version of Chha Dhala Pravachan Part 6 (Hindi) is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on rajesh@AtmaDharma.com so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

Version History

Version Number	Date	Changes
001	9 December 2009	First electronic version

प्रकाशकीय

पण्डित प्रवर श्री टोडरमलजी कृत छहढाला की छठवीं ढाल पर आध्यात्मिक संत पूज्यश्री कानजीस्वामी के प्रवचन प्रकाशित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

छहढाला दिगम्बर जैन समाज का सर्वाधिक लोकप्रिय सरल एवं बोधगम्य ग्रन्थ है। अध्यात्म रस से भरपूर यह ग्रन्थ 'गागर में सागर' की उक्ति को चरितार्थ करता है। आज भी दिगम्बर जैन समाज में सैकड़ों नर-नारियों को यह ग्रन्थ कंठस्थ है तथा दिगम्बर जैन समाज के सभी परीक्षा बोर्डों के पाठ्यक्रम में यह सम्मिलित है।

समयसार आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों की भांति छहढाला भी पूज्य स्वामीजी को अत्यन्त प्रिय था तथा इस पर उन्होंने प्रवचन करके इसका मर्म जन-जन तक पहुँचाया है।

पूज्य स्वामीजी इस युग के सर्वाधिक चर्चित आध्यात्मिक क्रान्तिकारी महापुरुष हो गए हैं। वर्तमान में दृष्टिगोचर दिगम्बर जैनधर्म की अभूतपूर्व धर्मप्रभावना का श्रेय पूज्य स्वामीजी को ही है। उनका कार्यकाल दिगम्बर जैनधर्म के प्रचार-प्रसार का स्वर्णयुग रहा है।

यद्यपि वे आज हमारे बीच नहीं हैं, तथापि उनके प्रताप से निर्मित इकसठ दिगम्बर जिन मन्दिर एवं लाखों की संख्या में प्रकाशित सत्साहित्य हमें हजारों वर्षों तक सत्य का दिग्दर्शन कराता रहेगा।

षट्खण्डागम भाग-१, समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड़, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, बृहद् द्रव्य संग्रह, मोक्षमार्ग प्रकाशक, तत्त्वार्थसार, आत्मानुशासन, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, पद्मनन्दि पंचविंशतिका, समयसार कलश टीका, नाटक समयसार, छहढाला आदि अनेक ग्रन्थों पर प्रवचनों के माध्यम से उन्होंने अनेकान्त, वस्तु स्वातन्त्र्य, कर्ता-कर्म सम्बन्ध, क्रमबद्धपर्याय, निमित्त उपादान आदि जैन दर्शन के आधारभूत सिद्धान्तों की आगम एवं युक्तिसंगत व्याख्या करके जिनशासन की अद्वितीय सेवा की है। उनके प्रवचनों के प्रभाव से जिनागम का प्रत्येक सैद्धान्तिक पहलू तथा जिनागम की प्रतिपादन

शैली स्याद्वाद, निश्चय-व्यवहार तथा प्रमाण-नय-निक्षेप आदि का स्वरूप भी जन-जन में चर्चित हो गया है।

अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों का सांगोपांग विवेचन उनकी ावाणी की महत्वपूर्ण विशेषता रही है। उनके द्वारा प्रतिपादित स्वानुभूति का स्वरूप, विषय एवं उसके पुरुषार्थ का विवेचन चिरकाल से स्वानुभूति की प्रेरणा देता रहेगा।

स्वाध्याय के क्षेत्र में पूज्य स्वामीजी ने अभूतपूर्व क्रान्ति की है। उनके प्रवचनों के प्रभाव से समाज में स्वाध्याय की प्रवृत्ति को यथार्थ दिशा मिली है। नय विवक्षापूर्वक जिनवाणी का भावार्थ हृदयंगम करते हुए स्वाध्याय करने की परम्परा का विकास उन्हीं की देन है।

छहढाला ग्रन्थ पर पूज्य स्वामीजी ने गुजराती भाषा में प्रवचन किए थे, जिनका संकलन स्व. ब्र. हरिलाल ने वीतराग-विज्ञान के नाम से किया था। यह बाद में पृथक्-पृथक् भाग के रूप में सोनगढ़ से प्रकाशित किए गए थे। इसका हिन्दी अनुवाद कराकर भाग – १, २, ३ ४ व ५ का प्रकाशन हम पूर्व में कर चुके हैं, अब यह छठवाँ भाग भी आपके हाथों में हैं।

इस छठवें भाग का गुजराती से हिन्दी अनुवाद पण्डित अभयकुमार जैन शास्त्री ने किया है तथा सम्पादन का महत्वपूर्ण कार्य डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने किया है। संस्था दोनों महानुभावों का हृदय से आभ्भार मानती है।

प्रकाशन व्यवस्था सदा की भांति विभाग के प्रभारी अखिल बंसल ने सम्हाली है अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं। जिन महानुभावों ने इस पुस्तक की कीमत कम करने में सहयोग प्रदान किया है, संस्था उनकी भी आभारी है।

आप सभी मर्म का समझकर अपना आत्मकल्याण करें, इसी भावना के साथ –

ट्रस्टी
पूज्यश्री कानजीस्वामी ट्रस्ट, देवलाली

महामंत्री
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विषय सूची

१.	पाँच महाव्रत	७
२.	एषणा, आदान निक्षेपण एवं प्रतिष्ठापना समिति का वर्णन	१६
३.	तीन गुप्ति और पाँच इन्द्रियजय का वर्णन	१६
४.	अदन्तधोवन आदि शेष सात मूलगुणों का स्वरूप	२५
५.	बारह तपों का स्वरूप	३३
६.	सिद्धि प्राप्ति का उपाय	३६
७.	मुनिराज के स्वरूप का विशेष वर्णन	५४
८.	मुनिराज के स्वरूपाचरण का विशेष वर्णन	६३
९.	शुक्ल ध्यान का फल	७२
१०.	सिद्धों का स्वरूप	८३
११.	दाव मत चूको यहै	६३
११.	उपसंहार	१००

पर को अपना मान बैठा, निज को पहिचाना नहीं।
भूल है यह आपकी जो आपको जाना नहीं।।
आपको जाने बिना परमात्म-पद पाना नहीं।
परमात्मपद पाकर फिर संसार में आना नहीं।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

वीतराग-विज्ञान भाग-६

छहढाला : छठवीं ढाल

अब यहाँ छठवीं ढाल में मोक्षमार्ग के पथिक, महाभाग्यवान, महाव्रती, मोह से भिन्न शुद्ध रत्नत्रय के धारक, भव, तन और भोगों से विरक्त होकर निरन्तर बारह भावनायें भानेवाले वीतरागी संतों के आचरण का वर्णन है। हे भव्य जीवो ! तुम इसे सुनकर अपनी आत्मा की पहचान करो।

मुनिराजों का भेदज्ञानमय वीतरागी जीवन कैसा होता है और इसके साथ २८ मूलगुण आदि का आचरण कैसा होता है ? छठवीं ढाल में इन सबका वर्णन किया गया है – इसे जानने पर आत्मा की अनुभूति की पहचान हो जाती है।

निम्नांकित छन्द में अट्ठाईस मूलगुणों में सर्वप्रथम पाँच महाव्रतों का वर्णन किया जा रहा है।

पाँच महाव्रत

षट्कायजीव न हननतैं सब विध दरबहिंसा टरी,
रागादिभाव निवारतैं हिंसा न भावित अवतरी।
जिनके न लेश मृषा, न जल-मृण हू बिना दीयो गहैं,
अठदश सहसविध शीलधर, चिद्ब्रह्म में नित रमि रहैं।। १।।

पाँच महाव्रतों में पहला अहिंसा महाव्रत है। पाँच प्रकार के स्थावरकाय अर्थात् एकेन्द्रिय जीव और त्रसकाय – इसप्रकार छहकाययुक्त जीवों की रक्षापूर्वक मुनिराजों की प्रवृत्ति होती है। वे ऐसी सावधानीपूर्वक प्रवृत्ति करते हैं कि पानी की एक बूँद या हरितकाय के एक कण में भी रहनेवाले जीव की हिंसा न हो अर्थात् वे बाहर में सर्वप्रकार की द्रव्यहिंसा से दूर हैं। अन्तर में

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मिथ्यात्व और कषायभावों का अभाव होने से उन्हें भावहिंसा नहीं होती। इसप्रकार मुनिराजों को अहिंसा महाव्रत होता है। जिसमें जीव हिंसा संभव हो – ऐसा आहार-पानी उन्होंने छोड़ दिया है।

वास्तव में रागादि भावों की उत्पत्ति होना ही हिंसा है। मुनिवरों को अन्तर में कुछ अधिक वीतराग भाव वर्तता है; इसलिए उन्हें अपने चैतन्य प्राणों का घात नहीं होता, रत्नत्रय का घात नहीं होता अर्थात् उन्हें भावहिंसा उत्पन्न नहीं होती। रागादि की अनुत्पत्ति ही अहिंसा है।

वनस्पतिकाय में अनन्तजीव हैं, पानी की एक बूँद में असंख्य जीव हैं, अण्डे में पञ्चेन्द्रिय जीव हैं – इसप्रकार जिसे जिनमार्ग में कहे गये छहकाय के जीवों की श्रद्धा है, वही सच्चा अहिंसा धर्म पाल सकता है। जिसे सर्वज्ञ के वचनों की श्रद्धा नहीं है, सूक्ष्म जीवों का अस्तित्व कहाँ-कहाँ है – इसकी खबर नहीं है। शहद आदि में त्रसजीव हैं, अण्डे में पञ्चेन्द्रिय जीव हैं, जो यह बात नहीं जानते – ऐसे अज्ञानी जीव अहिंसा का पालन कैसे कर सकते हैं ? जो सर्वज्ञकथित जीवस्थानों को जानता और मानता है, उसे ही सच्ची जीवदया होती है। जिसे व्यवहार से भी जीवस्थानों की खबर नहीं है, उसे द्रव्य अहिंसा भी नहीं होती।

जीव का चैतन्य जीवन राग से भिन्न है। राग स्वयं भावहिंसा है, तो भी जो उसे धर्म का कारण मानता है, उसे रागरहित चैतन्यभावरूप भाव अहिंसा कैसे होगी ? वह तो राग रहित भाव अहिंसा को पहचानता भी नहीं; इसलिए द्रव्य-भावरूप द्रव्य अहिंसा भले हो; परन्तु उसे भाव अहिंसा नहीं होती; क्योंकि मिथ्यात्वसहित अनन्त कषायों से उसके चैतन्य प्राणों का प्रतिक्षण घात होता रहता है।

अहा ! द्रव्य और भावहिंसा से रहित और रत्नत्रयरूप वीतरागभाव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सहित मुनियों का जीवन धन्य है। दूसरा महाव्रत सत्य महाव्रत है। अहिंसा के समान सत्य आदि को भी द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का समझना चाहिए। वास्तव में 'रागादिभाव उत्पन्न न होना ही अहिंसा है' – इस कथन में सत्य आदि अन्य सभी व्रत समा जाते हैं; क्योंकि जहाँ रागादिभाव उत्पन्न नहीं होंगे, वहाँ असत्य, चोरी आदि अन्य पाप भी उत्पन्न नहीं होंगे।

देखो ! ये महाव्रत मुनियों को तो अन्तर में वीतरागभाव सहित होते हैं। उनके भावों में भी असत्य नहीं है और वे वचनों से भी असत्य नहीं बोलते। आक्रोशपूर्वक बोलना या किसी का अहित करनेवाले वचन बोलना भी असत्य है। वास्तव में तो अनेकान्तमय सत्य वस्तुस्वरूप का विपरीत कथन करना महान असत्य है। जिसे वस्तु के सत्यस्वरूप की खबर नहीं है; उसे द्रव्य-भावरूप सत्यव्रत का सच्चा पालन नहीं होता।

अनेकान्तमय सत्यस्वरूप को जाननेवाले और वीतरागभाव में झूलनेवाले मुनिवरों को असत्य बोलने का प्रसंग ही कहाँ है ? उन्हें जगत से कुछ लेना-देना नहीं है, वे तो चैतन्य की मस्ती में डोलते रहते हैं। जहाँ उन्हें सत्यस्वरूप से बाहर शुभ विकल्प में आना भी नहीं सुहाता, वहाँ असत्य वचन का भाव कैसे हो सकता है ? इसप्रकार मुनियों को सत्य महाव्रत होता है।

तीसरा महाव्रत अचौर्य महाव्रत है। अपने आत्मा के वीतरागी रत्नत्रय वैभव से सन्तुष्ट मुनिवरों को बाह्य पर-द्रव्यों से क्या प्रयोजन है, जो वे चोरी करें ? अरे ! अन्य वस्तुओं की तो बात ही क्या ? वे तो मिट्टी व पानी भी बिना दिये ग्रहण नहीं करते। जब श्रावक नवधा भक्तिपूर्वक पड़गाहन करके बुलाते हैं तब वे एकबार शुद्ध आहार ग्रहण करते हैं। वे नवधाभक्ति के बिना आहार ग्रहण नहीं करते तथा आहार न मिलने पर आहार के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लिये याचना नहीं करते। माँगना तो दीनता है। अयाची मुनिराजों को दीनता कैसे हो सकती है ? वे परद्रव्यों को अपना नहीं मानते। इसलिए किंचित् भी उनका ग्रहण नहीं करते। परद्रव्य को अपना माननेवाले के भावों में परद्रव्यों के ग्रहणरूप चोरी है। मुनिराजों को भाव और द्रव्य से अचौर्य महाव्रत होता है।

चौथा महाव्रत ब्रह्मचर्य महाव्रत है। अहा ! जिसने चैतन्य में रमणता का अतीन्द्रिय आनन्द चखा है; ऐसे मुनिराज सदा चिद्ब्रह्म में रमनेवाले हैं। उन्हें बाह्य विषयों में रमणता छूट गई है। वे इतने निर्विकार हो गए हैं कि उन्हें देह ढाँकने की वृत्ति भी नहीं रहती, इसलिए नग्न-दिगम्बर रहते हैं। वे ब्रह्मानन्द स्वरूप में निरन्तर चरते अर्थात् विचरण करते हैं। अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द की फसल पकी है, मुनिराज उसी में विचरण करते रहते हैं, इसलिए वे शीलवन्त हैं। अठारह हजार प्रकार के शील को धारण करते हैं। जिसने चैतन्यब्रह्म का महान सुख नहीं जाना और जो परद्रव्य तथा राग में सुख मानकर उसी में रमण करता है, वह बाह्यचारी है, ब्रह्मचारी नहीं। उसे भाव और द्रव्य ब्रह्मचर्य का सच्चा पालन नहीं होता। ब्रह्मानन्दस्वरूप में विचरण करनेवाले वीतरागी मुनिराज को अब्रह्म भाव उत्पन्न ही नहीं होते, विषयों में उनकी वृत्ति ही नहीं जाती, उन्हें सहज ब्रह्मचर्य होता है।

पाँचवाँ महाव्रत अपरिग्रह महाव्रत हैं। इसका वर्णन दूसरे छन्द की प्रथम पंक्ति में किया गया हैं –

अंतर चतुर्दश भेद, बाहिर संग दसधा तैं टलें,
परमाद तजि, चौकर मही लखि समिति ईर्या तैं चलें।
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरें,
भ्रमरोगहर जिनके वचन मुखचन्द्र तैं अमृत झरें।। २।।

एक मिथ्यात्व और क्रोधादि चार कषाय तथा हास्यादि नौ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नोकाषाय – इसप्रकार चौदह प्रकार के अन्तरंग परिग्रह हैं तथा धन-धान्य, मकान, वस्त्रादि दश प्रकार के बाह्य परिग्रह होते हैं। अन्तर में चैतन्यतत्त्व के स्वसंवेदन के बल से मुनिराज को मिथ्यात्व अव्रत आदि भावों का परिग्रह छूट गया है और बाहर में वस्त्र-पात्र-धन आदि का परिग्रह छूट गया है। जहाँ देह का भी ममत्व नहीं रहा, वहाँ वस्त्रादि का ग्रहण कैसा ? जिन्हें स्वरूप में लीनता से बारम्बार शुद्धोपयोग होता रहता है – ऐसे मुनिवरों को कषाय के अभावरूप शुद्ध परिणति निरन्तर होती रहती है और यही धर्म है। यहाँ ऐसी शुद्धि के साथ होनेवाले आचरण का वर्णन किया जा रहा है।

यद्यपि मुनिराज को संज्वलन कषाय शेष है; परन्तु तीन प्रकार की मुख्य कषायें छूट जाने की अपेक्षा उन्हें अपरिग्रही कहा है।

मुनिराजों के पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियजय, छह आवश्यक और शेष सात मूलगुण – इसप्रकार २८ मूलगुण होते हैं। इनका वर्णन छठवीं ढाल में निम्नानुसार किया गया है –

अहिंसादि पाँच महाव्रतों का वर्णन प्रथम छन्द में तथा द्वितीय छन्द की प्रथम पंक्ति में किया गया है।

ईर्या आदि पाँच समितियों में से ईर्या एवं भाषा समिति का वर्णन द्वितीय छन्द की तीन पंक्तियों में और एषणा, आदान-निक्षेपण और प्रतिष्ठापना समिति का वर्णन तीसरे छन्द में किया गया है।

पाँच इन्द्रिय-विजय का वर्णन चौथे छन्द में किया गया है।

छह आवश्यकों का वर्णन पाँचवें छन्द की दो पंक्तियों में किया गया है।

शेष सात मूलगुणों अर्थात् अस्नान, अदंतधोवन, अचेलकता भूमि-शयन, दिन में एकबार आहार ग्रहण, खड़े होकर आहार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ग्रहण और केशलोंच का वर्णन पाँचवें और छठवें छन्द में किया गया है।

देखो ! भगवान महावीर का जीव जब सिंह पर्याय में था, तब दो मुनिराजों ने आकाश से उतरकर उपदेश दिया था। उनकी शान्त चेष्टा देखकर सिंह मुग्ध हो जाता है और उनकी भाषा भी समझ जाता है। उसे लगता है कि अहो ! मुनिराज मुझे वीतरागी चैतन्यतत्त्व सुना रहे हैं, यह मेरे हित की कोई अपूर्व बात है। ये मुनिराज मेरे परम हितैषी हैं। वह सिंह मुनिराज की भाषा समझ जाता है और उनका शान्त भाव भी समझ जाता है और उसी समय भ्रम दूर करके सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। अहा ! मुनिराज के वचन कैसे होंगे ? वे वचन अन्तर में शान्तरस के अनुभव में से आते हैं; इसलिए उनमें से भी शान्त रस झरता है। श्रीमद् राजचन्द्र ने भी कहा है :–

वचनामृत वीतराग के, परम शान्त रस मूल।
औषधि जो भवरोग की, कायर को प्रतिकूल।।

जिसे जिनवचन नहीं रुचते, जिनवचन सुनकर जिसका पुरुषार्थ नहीं जगता, उसे कायर कहा है। अहो ! मुनिराज के वचन भी जिनवचन हैं, वे आत्मा को जगाकर परम शान्तरस का अनुभव करानेवाले हैं और भवरोग दूर करनेवाली औषधि है। यहाँ छहढाला में मुनिराज के वचनों को भ्रमरोग हरण करनेवाले कहा है। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने भी उन्हें भवरोग की औषधि कहा है। जिनवचन आत्मभ्रान्तिरूपी महारोग को दूर करनेवाली अमोघ औषधि है। औषधि भले अमोघ हो; परन्तु रोग तो उसे खाने पर ही मिटता है न। उसीप्रकार जिनवचनों को सुनकर अन्दर उतारने पर, उनका विचार करके भाव समझने पर ही भवरोग मिटता है। जो जिनवचन सुनने की फुरसत ही नहीं निकालता,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उन पर विचार भी नहीं करता तो उसे लाभ कैसे होगा ? इसलिए कहा है कि 'कर विचार तो पाम'। ज्ञानियों ने कहने में कोई कसर नहीं रखी; परन्तु इस जीव ने उन पर लक्ष्य नहीं किया; इसलिए इसे आत्मज्ञान नहीं हुआ। अहो ! मुनिराज के वचन तो तत्काल बोधक हैं, उनका भाव समझने पर उसी क्षण आत्मबोध हो जाता है – ऐसे मधुर वचन मुनिराज के श्रीमुख से झरते हैं।

अन्तर में वीतरागी आनन्द में झूलनेवाले मुनिराज जब बोलते हैं तो ऐसा लगता है कि उनके मुख से आनन्द झर रहा हो। विदेहक्षेत्र में जाकर सीमंधर भगवान की वाणी साक्षात् सुननेवाले कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने पंचास्तिकाय के मंगलाचरण में जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करते हुए उन्हें रागादि दोष रहित निर्मल और अत्यन्त मधुरवाणी वाला कहा है। इसीप्रकार मुनिराज की वाणी भी अमृत बरसानेवाली और जगत का हित करनेवाली अर्थात् 'जग सुहितकर' है।

मुनियों की वाणी मीठी होती है, उसमें कटुता नहीं होती। मुनिराज चाहे जैसी तुच्छ भाषा नहीं बोलते; उनकी भाषा तो शान्त रसमयी, गंभीर प्रयोजनगर्भित होती है। उसे सुनते ही संशय मिट जाता है, विषयों का रस छूट जाता है और जीव चैतन्यरस का अमृतपान करके तृप्त हो जाता है। जिसप्रकार चन्द्रमा में से शीतल अमृत झरता है उसीप्रकार मुनिराज के मुखरूपी चन्द्रमा में से परम शान्तरस का अमृत झरता है; जिससे भव का क्लेश मिट जाता है।

देखो ! मोक्षमार्गी मुनिराजों की भाषा समिति कैसी अलौकिक होती है। 'हे भव्य जीवो ! तुम अपने वीतरागी आनन्द स्वभाव से भरपूर आत्मा का आश्रय करो तुम्हें परम आनन्द होगा। तुम अनन्त गुणों से भरपूर हो, सिद्ध समान परमात्मा हो – ऐसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रतीति करो, श्रद्धा करो, अनुभव करो, तुम्हें उत्तम सुख होगा, तुम्हारा कल्याण होगा।' ऐसी मधुरवाणी मुनिराज के श्रीमुख से झरती है। अहा ! जो वाणी आत्मा को भगवान कहकर बुलाती है उसकी मिठास की क्या बात कहना ? तीर्थंकरों द्वारा प्रसिद्ध किये गये मोक्षमार्ग को बतानेवाली है, जीवों को क्रोधादि कषाय से छुड़ाकर मोक्षमार्ग में लगाती है, **भवरोग को मिटाती है और मोक्षसुख चखाती है।**

मुनिराज का जीवन तो वीतरागी साधना का जीवन है। वे मौन रहकर अपनी आत्मसाधना करते रहते हैं और जब बोलते हैं तो ऐसा बोलते हैं, जिससे वीतराग भाव का पोषण होता है। तीर्थंकर तो दीक्षा लेकर मुनि होने के बाद केवलज्ञान होने तक मौन ही रहते हैं। केवलज्ञान होने के बाद ही उनकी दिव्यध्वनि खिरती है – यह बात वचनगुप्ति के प्रकरण में विस्तार से आएगी; यहाँ तो भाषा समिति की बात चल रही है अर्थात् मुनिराज जब बोलते हैं तो कैसी सावधानी से बोलते हैं, उनकी भाषा कैसी होती है ? – उसका वर्णन है।

धर्मी श्रावक ने भी आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द रस चखा है, उसकी वाणी भी धर्म की पोषक होती है, मधुर होती है और मोक्षमार्ग बतलानेवाली होती है। शास्त्रों में कहा हैं कि मधुर भाषा के रूप में परिणमित होनेवाली भाषा वर्गणा इस लोक में सर्वत्र उपलब्ध है, तो हे जीव ! तू मधुर भाषा बोल न ! इसमें पैसा खर्च नहीं करना पड़ता, मेहनत नहीं करनी पड़ती तो फिर अशुभ वचन क्यों बोलता है ? हितरूप मधुर वचन बोल न !

अहा हा ! मुनियों के 'जग सुहित कर' मधुर वचन बड़े भाग्य से सुनने मिलते हैं। उनके श्रीमुख से चैतन्य स्वभाव को प्रकट करनेवाली वीतरागवाणी सुनकर समझने से जीवों का कल्याण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता है, उन्हें सम्यग्दर्शनादि उत्पन्न होते हैं। ऋषभदेव के जीव को भोगभूमि में मुनिराज का उपदेश सुनकर तत्क्षण सम्यग्दर्शन हो गया था। भगवान महावीर के जीव को सिंह के भव में और भगवान पारसनाथ के जीव को हाथी के भव में मुनिराज का मधुर उपदेश सुनकर उसी समय सम्यग्दर्शन हो गया था।

आत्मा को सुखदायक उपदेश देते हुए मुनिराज कहते हैं "अहो जीवो ! तुम्हारा आत्मा इस देह से भिन्न है। ये राग-द्वेष, क्रोध-मानादि दुखदायक भाव भी तुम्हारा स्वरूप नहीं है। तुम तो ज्ञानानन्द स्वभावी भगवान आत्मा हो। अगाध वैभव से भरपूर अपने आत्मा का लक्ष्य करके उसमें लीन हो जाओ तो तुम्हारा परमात्मपना तुम्हें प्रत्यक्ष अनुभव में आयेगा और दूसरों से सुख माँगने की दीनता छूट जायेगी। आत्मा स्वयं परमात्मसुख का भण्डार है, वह विषयों से सुख की भीख माँगे – यह उसे शोभा नहीं देता। प्रभु ! तू दीन और भिखारी नहीं, भगवान है; भगवान को भीख माँगना शोभा नहीं देता। धन के ढेर और पञ्चेन्द्रिय विषयों में सुख नहीं है, तू स्वयं सुख का भण्डार है। धन का अभाव दुख का कारण नहीं है; परन्तु अपने को धन के अभाव से दुःखी मानने रूप दीनता अर्थात् भिखारीपना दुःख का कारण है। भगवन ! तू दीन नहीं है, तू तो अनन्त गुणों के भण्डार रूप परमेश्वर है, अन्दर में नजर कर, तू निहाल हो जायेगा।

वाह ! देखो तो जरा सन्तों की वाणी की रणकार ! यह वाणी आत्मा को जगाकर खड़ा कर देती है, उसे हित के मार्ग पर लगाने वाली है। इसे सुनते ही आत्मा आनन्दित होकर उल्लसित हो जाता है। "अहो ! मेरा स्वरूप इतना अद्भुत है" – इसप्रकार आश्चर्यचकित होकर अन्तर्मुख हो जाता है और सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है ऐसी अपूर्व हितकारी वाणी मुनिवरों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के श्रीमुख से झरती है। वह समय कैसा होगा, जब कुन्दकुन्दाचार्य जैसे वीतरागी सन्त इस भूमि पर विचरण करते होंगे और अपनी मधुर वाणी से एकत्व-विभक्त ज्ञायक स्वरूप दिखाते होंगे ! अहा हा ! वे क्षण और वे भाव कैसे होंगे और उनकी वाणी को झेलकर एकत्व-विभक्त आत्मा का अनुभव करनेवाले श्रोताजन कैसे होंगे !! कुन्दकुन्द प्रभु के मुखचन्द्र से वीतरागी अमृत झरता होगा और महा भाग्यवान श्रोताजन वह अमृत पीकर स्वानुभव करते होंगे। धन्य है वह अवसर ! मुनिराज उपदेश देते होंगे, किन्तु दूसरे ही क्षण भाषा का विकल्प छूट जाने से निर्विकल्प उपयोग द्वारा आत्मा के आनन्द रस का पान करने में मग्न हो जाते होंगे ! ऐसा मुनि जीवन धन्य है ! यह मोक्षमार्ग धन्य है !!

तत्त्व से विरुद्ध उपदेश करनेवाले अज्ञानी जनों की वाणी कदाचित् मधुर हो, उनके वचनों में मिठास हो तो भी उनके वचन जीवों का अहित करनेवाले होने से कड़वे ही हैं। उन राग पोषक वचनों का फल कड़वा ही है; क्योंकि वे मिथ्यामार्ग बताकर जीवों का अहित करनेवाले हैं। मिथ्यात्व ही जीव का सबसे बड़ा अहित है। ज्ञानी के वचन आत्मा का वीतरागी स्वरूप बताकर उसे अहित से छुड़ाकर हितरूप मोक्षमार्ग में लगाते हैं। जैन मुनि के मधुर वचन जीव को पहले मिथ्यात्व से छुड़ाकर फिर राग-द्वेष से भी छुड़ाते हैं। इसप्रकार वीतराग विज्ञानता के उपदेश द्वारा वे जीवों का हित करते हैं।

एषणा, आदान-निक्षेपण एवं प्रतिष्ठापना समिति का वर्णन

छयालीस दोष बिना, सुकुल श्रावकतनें घर अशन को,
लें तप बढ़ावन हेतु, नहिं तन पोषते तजि रसन को।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुचि ज्ञान संयम उपकरण लखिकें गहें लखिकें धरें,
निर्जन्तु थान विलोकि तन मल मूत्र श्लेषम परिहरें।। ३।।

यहाँ रत्नत्रयरूप शुद्धि के धारक मोक्षमार्गी मुनिराज की क्रियाओं का वर्णन चल रहा है। पाँच समितियों में से ईर्या और भाषा समिति का वर्णन करने के पश्चात् अब तीसरे छन्द में शेष तीन समितियों का स्वरूप बताया जा रहा है।

एषणा समिति : ज्ञान और ध्यान द्वारा आत्मसाधना में लीन रहनेवाले मुनिराज को चारित्र की स्थिरता के उद्देश्य से आहार लेने की वृत्ति उठने पर वे दिन में एकबार ही एक ही घर में निर्दोष आहार लेते हैं, वे बार-बार आहार नहीं लेते। जैनमार्ग के आचार को जानने वाले उत्तम कुलवान श्रावक के यहाँ मुनिराज आहार लेते हैं। जैन श्रावक के हृदय में मुनिराज को आहार देते समय जैसी नवधा भक्ति होती है, वैसी दूसरों को नहीं होती। नवधा भक्ति के बिना मुनिराज आहार नहीं लेते।

भगवान ऋषभदेव जब मुनिदशा में थे; तब (दीक्षा लेने के छह माह बाद) आहार लेने के लिए नगर में आते थे; परन्तु उस समय कोई नवधा भक्ति आदि रूप आहारदान की विधि नहीं जानता था; अतः छह माह तक उन्हें आहार लेने का प्रसंग ही नहीं बना। हस्तिनापुर के राजा श्रेयांसकुमार को जातिस्मरण ज्ञान हुआ, जिसमें उन्हें पूर्वभव में मुनिराज को विधिपूर्वक आहार देने की विधि का स्मरण हो गया। उन्होंने उसी प्रकार विधिपूर्वक पड़गाहन करके मुनिराज ऋषभदेव को इक्षुरस का आहार दिया। इस भरत क्षेत्र में मुनिराज को आहार देने का प्रसंग असंख्य वर्षों बाद प्रथम बार बना। इसलिए भरतचक्रवर्ती ने राजा श्रेयांस का अभिनन्दन करते हुए उन्हें दानतीर्थ का प्रवर्तक कहा। तभी से इस भरत क्षेत्र में मुनियों को आहार देने की परम्परा प्रारम्भ हुई।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसप्रकार जैन मुनि कुलवान श्रावक के घर विधिपूर्वक आहार लेते हैं। वे बिना विधि के जैसे तैसे चाहे जिसके यहाँ आहार नहीं लेते। वे अपने हाथ में, शोधकर तथा छयालीस दोष रहित आहार लेते हैं। इसकी गृद्धता छोड़कर किसी न किसी रस का त्याग करते हैं। मात्र संयम की रक्षा के प्रयोजन से आहार लेते हैं। अहा हा ! अन्दर में चैतन्य के अतीन्द्रिय आनन्द का निरन्तर भोजन करनेवाले मुनिराज पौद्गलिक आहार में मूर्छित कैसे हो सकते हैं ?

मुनिराज को आहार लेते समय उसमें यदि किसी जीव-जन्तु की हिंसा की शंका पड़ जाए या बाल जैसी अशुद्ध वस्तु आहार में दिख जाए तो वे आहार करना छोड़ देते हैं, चाहे गत एक-दो दिनों का उपवास ही क्यों न हो ? जरा-सा दोषयुक्त आहार लेने से क्या बिगड़ता है ? – ऐसे विचार से शिथिल होकर आहार नहीं लेते और आहार छोड़ देने पर अपने परिणामों में क्लेश नहीं करते। वे आहार सम्बन्धी विचार छोड़कर ज्ञान-ध्यान-स्वाध्याय में उपयोग जोड़ देते हैं। ऐसा उत्तम आचरण एषणा समिति में होता है।

देखो यह जैन साधुओं का आचरण ! मोक्षमार्गी मुनिवरों की क्रिया ! गृहस्थ श्रावक द्वारा अपने लिए बनाए गए आहार में से ही मुनिराज आहार ग्रहण करते हैं। यदि उनके लिए आहार बनाया गया हो या आहार बनाने में कोई हिंसारूप आरम्भ-समारंभ किया हो तो ऐसा उद्दिष्ट या अधःकर्मी आहार मुनिराज कदापि नहीं लेते। यदि शिथिल होकर ऐसा आहार ग्रहण करें तो एषणा समिति या अहिंसा महाव्रत नहीं रहता अर्थात् मुनिपना ही नहीं रहता। भाई ! जैन मुनियों का आचरण बहुत ऊँचा होता है। यह तो बाह्य स्थूल आचरण है, उनके अन्दर स्वानुभव रूप वीतरागी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आचरण की बात ही क्या कहना ? मुनिदशा तो पञ्च परमेष्ठी पद में है – उनके आचरण में ढीलापन नहीं होता। यह तो वीरों का मार्ग है, यहाँ कायरों का काम नहीं है ? इसप्रकार मुनिराज की एषणा समिति का वर्णन किया। मुनियों को वीतरागी आत्म साधना के साथ ऐसी एषणा समिति सहज होती है।

आदान-निक्षेपण समिति : वीतरागमार्गी जैन मुनियों को शरीर की रक्षा के लिए कोई उपकरण नहीं होता। संयम की रक्षा के लिए पीछी होती है; जिससे जीव-जन्तुओं की रक्षा होती है। वे ज्ञान के उपकरण के लिए शास्त्र रखते हैं तथा मल-मूत्रादि की शुचिता के लिए पानी रखने का सादा कमण्डल होता है। वे शास्त्र, कमण्डल या पीछी उठाते रखते समय सावधानीपूर्वक अवलोकन करते हैं, ताकि किसी जीव-जन्तु की विराधना न हो। ऐसे सावधान परिणाम का नाम आदान-निक्षेपण समिति है।

प्रतिष्ठापना समिति : मुनिराज शरीर के मल-मूत्र-कफ आदि का त्याग भूमि के अवलोकन पूर्वक सावधानी से करते हैं, ताकि जीव-जन्तुओं की रक्षा हो सके। इसे व्युत्सर्ग समिति भी कहते हैं। सम्यक् प्रकार से सावधानीपूर्वक प्रवृत्ति करना समिति कहलाता है। समिति बाह्य क्रिया में नहीं होती, अपितु वह जीव का भाव है। समिति प्रवृत्तिरूप है और गुप्ति निवृत्तिरूप है।

तीन गुप्ति और पाँच इन्द्रिय-जय का वर्णन

सम्यक् प्रकार निरोध मन-वच-काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण उपल खाज खुजावते।।
रस-रूप-गंध तथा फरस अरु शब्द शुभ-असुहावने।
तिनमें न राग-विरोध पञ्चेन्द्रिय-जयन पद पावने।। ३।।

मुनिराज जब मन-वचन-काया सम्बन्धी प्रवृत्ति छोड़कर अर्थात् उनका सम्यक् प्रकार से निरोध करके अपने आत्मा में ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपयोग को सावधान करते हैं; तब उन्हें तीन गुप्तियाँ होती हैं। इन गुप्तियों के समय मुनिराज ऐसे स्थिर हो जाते हैं कि उनकी स्थिर मुद्रा देखकर वन के हिरण उन्हें पत्थर समझकर उनसे अपनी खाज खुजाते हैं। मुनिराज तो ध्यान में लीन रहते हैं और हिरण निर्भय होकर उनके शरीर से अपना शरीर घिसते रहते हैं – ऐसी दशावाले मुनिराज को मन-वचन-काय गुप्ति होती है।

इन गुप्तियों को अट्ठाइस मूलगुणों में शामिल नहीं किया गया है। इनमें अट्ठाइस मूलगुणों की अपेक्षा विशेष शुद्धि है। यद्यपि गुप्ति के समय भी तीन कषाय का अभाव है और समिति के समय भी तीन कषाय का अभाव है; तथापि गुप्ति के समय स्वरूप में ही गुप्त रहने से विशेष शुद्धि है तथा समिति में, बाह्य प्रवृत्ति में उपयोग की सावधानी है। गुप्ति के समय उपयोग स्वरूप में ही सावधान रहता है, अन्दर गुप्त हो जाता है। गुप्तियों सहित आनन्द मग्न मुनिराज बिम्ब जैसे स्थिर होकर बैठे रहते हैं और सिंह, बाघ आदि शान्ति से उनके चरणों के पास आकर बैठ जाते हैं। खरगोश और हिरण उनके शरीर से टिक कर बैठ जाते हैं और अपनी खाज खुजाते हैं। अहो ! वह दृश्य कैसा अद्भुत होगा ?

देखो ! यह जैनधर्म का मुनिमार्ग ! मुनिमार्ग कहो या मुक्ति मार्ग कहो, वह शुद्धभावपूर्वक ही होता है। मुनिराज तो चैतन्यपिण्ड हैं, उन्हें चैतन्य के ध्यान की धुन लगी है, कषायें एकदम शान्त हो गई हैं, वैराग्य का पूर उमड़ रहा है, चैतन्य के ध्यान में स्थिरता के समय उपयोग में मन-वचन-काय का लक्ष्य छूट जाता है। मन-वचन और काया – ये तीनों परद्रव्य हैं। जब उपयोग स्वद्रव्य में एकाग्र होता है, तब परद्रव्य में प्रवृत्ति नहीं रहती अर्थात् उसका सम्यक् प्रकार से निरोध हो जाता है। उपयोग स्वरूप में ही गुप्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो जाता है; इसलिए उसे गुप्ति कहते हैं। मुनिराज को ऐसी दशा बारम्बार आती रहती है।

सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के काल में निर्विकल्प शुद्धोपयोग हुआ था, उसके बाद शुद्धोपयोगरूप ध्यान कभी-कभी होता है। उन्हें सम्यग्दर्शन निरन्तर कायम रहता है; परन्तु उपयोग की एकाग्रता कायम नहीं रहती। मुनियों का उपयोग क्षण-क्षण में अन्तर्मुख होता है अर्थात् उन्हें निर्विकल्प ध्यान होता है। ध्यान के समय वे शान्ति के वेदन में ऐसे लीन हो जाते हैं, जैसे कोई मूर्ति बैठी हो। हिरण अपना शरीर उनके शरीर से घिसे; सिंह गर्जना करे या ढोल बजते हों; तो भी उस तरफ उनका लक्ष्य नहीं जाता। उनका उपयोग तो मात्र स्वज्ञेय में ही ठहर गया है। उस समय के अतीन्द्रिय महा-आनन्द की क्या बात कहें ? जब स्वरूप में से उपयोग बाहर आता है, तब सविकल्पदशा में पाँच समिति होती हैं और जब उपयोग अन्दर (स्वरूप में) जाता है, तब निर्विकल्प दशा में गुप्ति होती है।

श्रीमद् राजचन्द्रजी ने मुनिदशा की भावना व्यक्त करते हुए 'अपूर्व अवसर' नामक काव्य में लिखा है –

विचरूँगा मैं एकाकी श्मसान में,
पर्वत में, जहाँ सिंह बाघ संयोग हो।
अडोल आसन, और न मन में क्षोभ हो,
मानो पाया परम मित्र का योग हो।।

अपूर्व अवसर में उन्होंने गुप्ति और समितियों का वर्णन भी किया है। आत्मा में स्थिरता गुप्ति है और गुप्तिरूप स्थिर न रहने पर जिन-आज्ञा अनुसार जो प्रवृत्ति होती है, उसे समिति कहते हैं। वह प्रवृत्ति भी प्रतिक्षण घटती रहती है और उसमें भी स्वरूप में स्थिरता का लक्ष्य रहता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धर्मात्मा जीवों के हृदय में ऐसी गुप्ति-समिति रूप मुनिदशा की भावना निरन्तर होती रहती है। जिसने अपना वीतरागी चैतन्यपद देखा है – ऐसे सम्यग्दृष्टि को ही मुनिदशा या मोक्षदशा की सच्ची भावना होती है। अज्ञानी तो बाहर के संयोग-वियोग को देखता है, वह अन्तर के अतीन्द्रिय भावों को नहीं पहचानता। मुनिराज की अन्तरंग दशा एकदम शान्त होती है, उनकी वृत्ति शरीरादि के प्रति उदासीन और निरपेक्ष होती है। रत्नत्रय के धारक और सिद्धपद के साधक, साधु भगवन्त जीवन-मरण के प्रति समभावी होते हैं। वे निज-स्वरूप में गुप्त रहकर भी तीन गुप्ति के धारक होते हैं।

वे मुनिराज पाँचों इन्द्रियों के शुभ या अशुभ विषय अर्थात् स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण और शब्दों में राग-द्वेष नहीं करते, इसलिए वे पाँचों इन्द्रियों को जीतनेवाले हैं। जहाँ अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का अतिशय वेदन वर्तता हो, वहाँ इन्द्रिय-विषयों की अधीनता कैसे हो सकती है ? कोई निन्दा करे या प्रशंसा करे, कोई बाण मारे या पूजा करे, नीरस आहार मिले या सरस आहार मिले – इत्यादि अनुकूल या प्रतिकूल संयोगों में आकुलता नहीं होती। अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होने पर ही ऐसी दशा हो सकती है। जिसे चैतन्य के आनन्द का वेदन नहीं होता, वही इन्द्रिय-विषयों में सुख मानता है। धर्मी ने तो सिद्ध समान चैतन्य सुख का स्वाद चखा है, उस सुख में लीनता के बल से वे पाँचों इन्द्रियों के विषयों को जीतते हैं।

छह खण्ड की उत्तम भोगसामग्री को भोगनेवाला सम्यग्दृष्टि उस सामग्री में किञ्चित् भी सुख नहीं मानता। वह अपने आत्मा को सुख स्वरूप अनुभव करता है, परन्तु अभी उसके परिणामों में विशेष स्थिरता नहीं हुई; इसलिए विषयों की तरफ उसका लक्ष्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाता है। उसे राग-द्वेष भी होते हैं, परन्तु वह उन्हें दुःखरूप समझता है, जबकि मुनिराज को तो परिणामों की स्वरूप में विशेष स्थिरता के कारण ऐसी वीतरागता प्रकट हो जाती है कि बाह्य-विषयों के प्रति उन्हें राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होते, इसलिए वे पञ्चेन्द्रियजयी हैं।

चैतन्यस्वरूप में एकाग्र होने पर मन में कोई विचार उत्पन्न नहीं होते, बोलने और चलने-फिरने की कोई वृत्ति नहीं होती; यही मन-वचन और काया की गुप्ति है और अतीन्द्रिय आनन्द के बल से इन्द्रिय-विषयों में राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होना इन्द्रियजय है।

इसप्रकार चौथे छन्द में तीन गुप्ति और पाँच इन्द्रियजयों का वर्णन किया, अब पाँचवे छन्द के प्रारम्भ में मुनियों के छह आवश्यकों का वर्णन करते हैं –

समता सम्हारें, थुति उचारें, वंदना जिनदेव को।
नित करें श्रुतरति करें प्रतिक्रम, तजें तन अहमेव को।।

मुनिराज प्रतिदिन छह क्रियाएँ अवश्य करते हैं; इसलिए इन्हें आवश्यक क्रिया कहा जाता है। वे प्रमाद रहित होकर सावधानीपूर्वक सामायिक आदि छह क्रियायें यथायोग्य समय पर करते हैं। यहाँ उन क्रियाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

(१) सामायिक : मुनिराज प्रतिदिन प्रातः, दोपहर और सायंकाल चैतन्य के चिन्तन में एकाग्र होकर वीतरागी समभावरूप सामायिक करते हैं। तीन कषाय के अभावरूप समभाव तो मुनियों को सदा होता है; फिर भी विशेष एकाग्रता के लिए राग-द्वेष रहित समभाव के अभ्यास के लिए सामायिक करतें हैं। सामायिक में परिणामों की विशुद्धता बढ़ते समय ऐसी दशा हो जाती है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मानो अभी केवलज्ञान हो गया हो या अल्पकाल में होनेवाला हो। इसप्रकार प्रतिदिन सामायिक का प्रयोग मुनियों का मूलगुण है।

(२) **स्तुति :** तीर्थंकरों और सिद्ध भगवन्तों की स्तुति करना मुनियों की दैनिक आवश्यक क्रिया है। मुनिराज भी जिनकी प्रतिदिन स्तुति-वन्दना करते हैं, उन भगवन्तों की महिमा की क्या बात कहें ? सिद्धों के स्वरूप का चिन्तन करते-करते मुनिराज, स्वभाव के लक्ष्य से निर्विकल्प हो जाते हैं।

(३) **वन्दना :** मुनिराज प्रतिदिन जिनदेव तथा आचार्य आदि की वन्दना करते हैं – यही वन्दना आवश्यक है।

(४) **स्वाध्याय :** मुनिराज प्रतिदिन स्वाध्याय करते हैं। रात्रि में भी चैतन्य के चिन्तनरूप उनका स्वाध्याय चालू रहता है। मुनिराज रात्रि में बोलते नहीं हैं; फिर भी आत्मा का स्वाध्याय चलता रहता है। यह उनकी दैनिक आवश्यक क्रिया है।

(५) **प्रतिक्रमण :** सुबह-शाम जो छोटे-बड़े दोष अतिचार लगे हों, मध्यस्थ होकर उनकी आलोचना करके अपने परिणामों को शोध कर, दोषों का प्रतिक्रमण कर प्रतिदिन मुनिराज अपने चित्त को शुद्ध करते हैं।

(६) **कायोत्सर्ग :** काया का उत्सर्ग अर्थात् शरीर की भी उपेक्षा करके मुनिराज वीरतापूर्वक ध्यान का प्रयोग करते हैं। यही कायोत्सर्ग है। मुनिराज प्रतिदिन कायोत्सर्ग करते हैं।

विशुद्ध परिणाम सहित सामायिक आदि छह क्रियायें प्रतिदिन अवश्य करना मुनिराजों के अट्ठाइस मूलगुणों में सम्मिलित है। मुनिराज इन क्रियाओं में सावधान रहते हैं। प्रमाद नहीं करते।

इसप्रकार पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रिय विजय और छह आवश्यक – कुल इक्कीस मूलगुणों का वर्णन हुआ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अब पाँचवें छन्द के उत्तरार्द्ध और छठवें छन्द में शेष सात मूलगुणों का वर्णन करते हैं।

अदन्तधोवन आदि शेष सात मूलगुणों का स्वरूप

जिसके न न्हौन, न दंतधोवन लेश अम्बर आवरन।
भू माँहि पिछली रयनि में कछु शयन एकासन करन।। ५।।
इकबार दिन में लें अहार, खड़े अलप निज-पान में।
कचलोंच करत न डरत परिषह सौं, लगे निज ध्यान में।।
अरि मित्र महल मसान कञ्चन,काँच निन्दन थुति करन।
अर्घावतारन असि प्रहारन, में सदा समता धरन।। ६।।

देखो ! यह मुक्ति के साधक मुनिराज के आचरण का वर्णन चल रहा है। देह के प्रति उदासीन मुनिराज देह की शोभा के लिये कुछ नहीं करते; क्योंकि उनका आत्मा स्वयं रत्नत्रय से शोभित हो रहा है। उन्हें देह के प्रति ऐसी उदासीनता होती है कि वे स्नान आदि क्रियायें भी नहीं करते। मुनिराज के शेष सात मूलगुण निम्नानुसार हैं –

(१) स्नान नहीं करना (२) दंत मंजन नहीं करना (३) शरीर को वस्त्र से नहीं ढँकना (४) यदि कदाचित् निद्रा लेना हो तो रात्रि के पिछले पहर में जमीन पर एक करवट से लेकर अल्प निद्रा लेना। उन्हें अधिक निद्रा नहीं होती, दिन में सोने का तो प्रश्न ही नहीं है (५) दिन में एक बार ही आहार लेना (६) खड़े-खड़े अपने हाथ में अल्प आहार लेना। हाथ में आहार लेने के कारण उन्हें 'हस्त भोजी' या 'कर पात्री' कहते हैं (७) केश-लुँच करना।

इसप्रकार पहले कहे गये इक्कीस और ये सात, कुल अट्ठाइस मूलगुण जैन साधुओं के होते हैं। इन मूलगुणों के भंग होने पर अर्थात् वस्त्रादि अंगीकार करने पर दिन में सोने पर या

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनेक बार भोजन करने पर मुनिपना नहीं रहता।

अहो ! जैन साधुओं की दशा अत्यन्त उत्कृष्ट होती है। वे परिषहों से नहीं डरते और आत्मध्यान में लीन रहते हैं। ध्यान द्वारा चैतन्यतत्त्व के आनन्द में समाए हुए मुनियों को उपसर्ग का क्या भय ? मुनिवरों की चैतन्य-गुफा में तो भय का प्रवेश ही नहीं है। इन अट्ठाइस मूलगुणों का वर्णन पण्डित बनारसीदासजी ने नाटक समयसार में भी किया है।

जैन मुनि निर्ग्रन्थ दिगम्बर होते हैं। उनके अन्तर में मोह की गाँठ नहीं होती और शरीर पर वस्त्रादि नहीं होते। निर्विकार मुनिराज को वस्त्र और स्नान कैसा ? जिसने सम्यक्त्व और चारित्र जल से मोह मल को धोकर आत्मा को पवित्र कर लिया है, उसे अब शरीर के स्नान की क्या आवश्यकता ? ऐसे मुनिराज महाधर्मधारी और महापुण्यवन्त होते हैं। यदि असाता के उदय से किसी मुनिराज के शरीर में कोई रोग हो जाये तो उससे मुनिपने में कोई दोष नहीं लगता। केवली की भाँति मुनियों के शरीर में भी रोगादि नहीं होते – ऐसा नहीं है। मुनियों को रोगादि होने पर भी उन्हें शरीर में मूर्च्छा नहीं है, इसलिये वे रोग से घबराते नहीं हैं, रोग से उनका रत्नत्रय नहीं बिगड़ जाता। अरे ! उन्हें स्वयं रोग मिटाने वाली औषधि ऋद्धि (सनतकुमार मुनिराज के समान) प्रकटी होने पर भी उन्हें उसका लक्ष्य भी नहीं होता। वे तो चैतन्य के अनुभव की धुन में अन्य सभी से निरपेक्ष रहते हैं। बाहर में कोई शत्रु हो या मित्र हो, महल हो या श्मशान हो, कँचन हो या काँच हो, प्रशंसा होती हो या निन्दा होती हो, कोई अर्घ्य चढ़ाकर पूजा करता हो या कोई तलवार से प्रहार करता हो – इन सभी स्थितियों में वे सदा समता धारण करते हैं और परिषहों में भी निर्भय होकर आत्म ध्यान में लीन रहते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वाह रे वाह ! मोक्ष को साधने वाले शूरवीर मुनिराज धन्य हैं। ऐसे मुनिराज के दर्शन भी महाभाग्य से मिलते हैं। इस समय तो उनके दर्शन दुर्लभ हैं।

अशरीरी सिद्ध पद को साधनेवाले मुनिराज को शरीर को स्वच्छ रखने की, वस्त्र से ढँकने की, औषधि आदि सम्हालने की वृत्ति नहीं होती। यदि शरीर को वस्त्र से ढाँकने की वृत्ति भी उठे, तो मुनिदशा नहीं रहती।

कुछ लोग कहते हैं कि आप तो अध्यात्मवादी हैं। परद्रव्य से भला-बुरा नहीं मानते। फिर मुनिराज वस्त्र रखें या न रखें ? इससे क्या फर्क पड़ता है।

अरे भाई ! तुझे अध्यात्म दृष्टि की खबर नहीं है। जिसे अध्यात्म दृष्टि प्रकट हो जाती है और जिसे अध्यात्म की खुमारी होती है, उसे निश्चित अंश में राग द्वेष भी छूट जाते हैं और जिसको राग-द्वेष नहीं होते, उसे सहज ही वैसा बाह्य प्रसंग भी नहीं होता। अध्यात्म में ऐसा सुमेल सहज होता है। जिसे अन्तर में ब्रह्मचर्य की खुमारी होती है। उसे बाहर में भी स्त्री का प्रसंग नहीं होता। मोक्ष के साधक मुनिराज की अन्तरंग दशा में अध्यात्म की कोई अद्‌भुत खुमारी होती है। उन्हें चैतन्य के आनन्द की और वीतरागता की ऐसी खुमारी होती है कि देह सम्बन्धी राग-द्वेष भी नहीं होते और जहाँ देह के प्रति भी राग नहीं होता, वहाँ वस्त्र धारण की क्रिया कैसे होगी ? अरे ! ठंड पड़ती हो और कोई भोला जीव भक्ति से चादर उड़ा जाए तो भी जैन साधु उसे उपसर्ग मानते हैं तो फिर स्वयं ही वस्त्र ओढ़ने की बात ही कहाँ रही ? अध्यात्म दृष्टि वालों को बराबर विवेक होता है। 'वस्त्र परद्रव्य है, उसमें क्या दोष ?' – ऐसी स्वच्छन्द बुद्धि उन्हें नहीं होती। जैन साधु वस्त्र रखें तो क्या दोष है ? – ऐसा कहनेवाले

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को जैन साधु की पवित्रता की पहचान नहीं है।

जिसप्रकार सज्जन पुरुष रोटी और माँस में अथवा पत्नी और माता में विवेक करते हैं; उसीप्रकार धर्मात्मा को परिग्रह सहित सग्रन्थदशा और परिग्रहरहित निर्ग्रन्थदशा में भेद का विवेक होता है।

हे जीव ! यदि तुझसे कदाचित् उत्तम मुनिदशा का पालन न हो सके तो भी उसका स्वरूप तो जैसा है, वैसा समझना, विपरीत नहीं मानना। जो वस्त्र सहित मुनिदशा मानता है, वह जैनधर्म के साधु को नहीं पहचानता, उसे जैनधर्म के गुरुतत्त्व की श्रद्धा नहीं है। बापू ! जैन मुनियों की दशा कोई अलौकिक है। जिनके रोम-रोम में से वीतरागता छलकती है – ऐसे मुनिराज कायर हैं क्या, जो ठंड या गरमी से बचने के लिए वस्त्र ओढ़ें ? वे तो उपसर्ग और परिषह को समभाव से सहज स्वीकार करनेवाले वीर हैं।

मुनिराज निरन्तर ज्ञान-ध्यान में लीन रहते हैं। वे कभी-कभी पिछली रात्रि में थोड़ी निद्रा लेते हैं, उन्हें विशेष प्रमाद नहीं होता। अहा, जिनका आत्मा चैतन्य की साधना में अत्यन्त जाग्रत है, उन्हें नींद लेना कैसे सुहाएगा ? जाग्रत रहकर सिद्धपद को साधनेवाले मुनिराजों से जैनशासन की शोभा है। उनका समावेश 'णमो लोए सव्वसाहूणं' में होता है।

देखो, यह मुनियों की क्रिया, मुनियों का आचरण। वीतरागमार्ग में वर्तनेवाले मुनियों की दशा अलौकिक है। उन्हें आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर वेदन होता है। शेर-हाथी जैसे सम्यग्दृष्टि जीवों को भी अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होता है। पञ्चम गुणस्थानी श्रावक को उनसे भी अधिक आनन्द है और छठवें-सातवें गुणस्थानवर्ती मुनियों को तो प्रचुर आनन्द का वेदन होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वे दिन में मात्र एकबार खड़े-खड़े आहार लेते हैं, वह भी निर्दोष और विधिपूर्वक होता है, तभी लेते हैं; अपने हाथ की अंगुलि में ही लेते हैं – इसप्रकार शुद्ध आहार न मिले तो आकुलता नहीं करते, आहार की वृत्ति तोड़कर, ध्यान और स्वाध्याय में चित्त को जोड़ते हैं। क्षुधा-तृषा आदि परिषहों को वैराग्य की उग्रभावना से जीतते हैं। आत्मचिन्तन में शान्तरस का भोजन करते हुए क्षुधा-तृषा के परिषह सहज ही जीत लिए जाते हैं। उन्हें चैतन्य के वीर्य का जोर है; इसलिए वे बाईस परिषहों से नहीं डरते, परिषह आने पर वे शिथिल नहीं होते। वे आत्मा के ज्ञाता-दृष्टा स्वभावरूप चैतन्यगुफा में बैठे-बैठे परम शान्ति की लहर में तृप्त रहते हैं। चैतन्य गुफा में बाह्य परिषहों का प्रवेश ही कहाँ है ? इसलिए उसमें परिषह का भय कहाँ से होगा ? उपसर्ग-परिषह आने पर भी मुनिराज समभाव को नहीं छोड़ते। परिषह उन्हें आत्म साधना से डिगा नहीं सकते। परिषह आने पर भी वे मोक्षमार्ग से अच्युत रहकर बहुत निर्जरा करते हैं। वे वैराग्य की ढाल से अपने रत्नत्रय की रक्षा करते हैं और पञ्चपरमेष्ठी पद में झूलते रहते हैं।

कुन्दकुन्दस्वामी आदि मुनियों की ऐसी दशा थी। भाई ! तुझसे यदि ऐसी मुनिदशा का पालन न हो सकता हो तो उसका स्वरूप पहचान कर उसकी भावना तो रख; परन्तु उसका स्वरूप विपरीत मत मान। यदि मुनियों का स्वरूप विपरीत मानेगा तो तेरी श्रद्धा बिगड़ जाएगी, तुझे सच्चे देव-गुरु-धर्म की और जैनमार्ग की श्रद्धा भी नहीं रहेगी। यदि तू सच्चे मार्ग की श्रद्धा करेगा तो तेरा सम्यक्त्व टिका रहेगा और तू भगवान के मार्ग में रहेगा। यदि विपरीत मान्यता करेगा तो तू मिथ्यादृष्टि होकर भगवान के मार्ग से भ्रष्ट हो जाएगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बापू ! आत्मकल्याण करने का इतना अच्छा अवसर हाथ में आया है, यदि यह अवसर चूक जाएगा जो फिर बारम्बार ऐसा अवसर नहीं आएगा; इसलिए सावधान हो जा और मान छोड़कर आत्महित के मार्ग में लग जा ! श्रीगुरु तुझे दुःख दूर करनेवाली और सुख उत्पन्न करनेवाली शिक्षा देते हैं।

जैन मुनि को शत्रु-मित्र में समभाव होता है। वे स्वयं तो किसी जीव को शत्रु-मित्र नहीं मानते; परन्तु यदि कोई जीव उनसे शत्रुता रखता है, उनकी निन्दा करता है तो वे उसके प्रति द्वेषभाव नहीं रखते और कोई जीव उन्हें उपकारी मानकर उनकी पूजा-स्तुति करे तो वे उसके प्रति रागभाव नहीं रखते। वे उन दोनों से उपेक्षित रहकर स्वयं अपने समभाव में रहते हैं।

देखो ! श्रेणिक राजा ने उपसर्ग किया तो भी यशोधर मुनिराज ने उसके प्रति द्वेषभाव नहीं रखा और ध्यान में ही बैठे रहे और उपसर्ग दूर होने पर चेलना देवी के साथ-साथ श्रेणिक राजा को भी धर्मवृद्धि का आशीर्वाद दिया। चेलना ने भक्ति की और श्रेणिक ने उपसर्ग किया; परन्तु मुनिराज ने उनमें भेद करके राग-द्वेष नहीं किया। मुनिराज का ऐसा वीतरागी समभाव देखकर श्रेणिक राजा आश्चर्यचकित हो गए, उनकी समझ में जैनधर्म की वीतरागता की महिमा आ गई और जैन धर्म की श्रद्धा करके उन्होंने सम्यग्दर्शन प्रकट कर लिया। वे इसी भरत क्षेत्र में इक्यासी हजार पाँच सौ वर्ष बाद उत्सर्पिणी काल में प्रथम तीर्थंकर के रूप में जन्म लेंगे।

जहाँ जीवन-मरण के प्रति भी समभाव है, वहाँ अन्य की क्या बात है ? मुनिराज को चैतन्य की परम शान्ति के वेदन में राग-द्वेष का कोलाहल सहन नहीं होता। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने भी लिखा है –

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शत्रु मित्र प्रत्ये वर्ते समदर्शिता,
मान-अमाने वर्ते तेज स्वभाव जो।
जीवित के मरणे नहिं न्यूनाधिकता,
भव-मोक्षे पण शुद्ध वर्ते समभाव जो।।

मुनिदशा में चैतन्यतत्त्व रत्नत्रय धर्म से खिल उठता है। निज वैभव से भरे हुए चैतन्य महल में बसनेवाले मुनिराज को बाहर में महल क्या और जंगल क्या ? उन्हें तो दोनों समान हैं। उनके लिए हीरा या काँच, सोना या पत्थर सभी एक जैसे ही हैं। विहार करते समय कदाचित् हीरों का खजाना दिख जाए तो भी उनका मन नहीं ललचाता। अरे ! उन्हें कोई विशेष लब्धि प्रकट हुई हो तो वे उसका भी राग नहीं करते। जो चैतन्य की कैवल्य लब्धि साध रहे हैं, उन्हें बाह्य लब्धियों की क्या कीमत ? वे उनमें क्यों अटकें ?

धर्मी श्रावक मुनिराज की ऐसी अद्भुत दशा को पहचानते हैं, उन्होंने स्वयं भी मुनियों जैसी वीतरागी शान्ति का स्वाद चखा है। मुनियों की तो क्या बात कहें ? उन्हें मात्र संज्वलन कषाय शेष रह गई है, इसके अलावा तो वीतरागता ही है। वे केवलज्ञान के बिल्कुल समीप पहुँच गए हैं, संसार के कोलाहल से दूर चैतन्य की शान्ति में ठहरकर बर्फ जैसे हो गए हैं। वाह मुनिराज ! आप में और केवली भगवान में क्या अन्तर है ?

शुद्ध रत्नत्रय के पालने से और तीन कषाय के अभाव से मुनि को जितनी वीतराग परिणति है, उतना परिषहजय तो सदा ही है, जितने राग-द्वेष हैं, उतना परिषहजय नहीं है। मात्र बाह्य प्रतिकूलता को परिषहजय नहीं कहते; परन्तु उसमें द्वेष न करके चैतन्य की शान्ति के वेदन से समता भाव रखना परिषहजय है।

भूख लगी हो और भोजन न मिले, पेट में और परिणामों में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जलन हो और आहार मिलने पर प्रसन्नता हो तो क्षुधापरिषह सहन किया नहीं कहा जाएगा; क्योंकि उसे राग-द्वेष हुए। श्रीमद् राजचन्दजी ने लिखा है :–

घोर तपश्चर्या मां पण मन ने ताप नहिं,
सरस अन्ने नहिं मन ने प्रसन्न भाव जो।

अनेक उपवास आदि तप करते हुए भी मन में संक्लेश न हो; और भीषण गर्मी में बहुत उपवास के पश्चात् आहार में, ठण्डा गन्ने का रस मिले तो उसमें सन्तोष न हो, जरा भी गृद्धि न हो। आहार मिलने के पहले और बाद में वैसा का वैसा चैतन्य का वीतरागी समभाव रहे तो परिषह जीता कहा जाए। बाह्य पदार्थों को सुख-दुःख का कारण न मानने पर ही ऐसा परिषहजय होता है; क्योंकि परपदार्थों को सुख-दुःख का कारण न मानने पर राग-द्वेष हुए बिना नहीं रहते। धर्मात्मा जानते हैं कि अहा मैं तो ज्ञाता हूँ..... संयोग मुझसे बाहर हैं, कोई भी संयोग मुझे सुख-दुःख का कारण नहीं है, मैं तो अपने ज्ञायकस्वभाव में रहकर अपनी शान्ति का वेदन करनेवाला हूँ। सम्यग्दृष्टि को भी ऐसा भान होता है; जबकि मुनिराज के परिणाम अपने ज्ञायकस्वभाव में बहुत अधिक स्थिर रहते हैं, उन्हें तीन कषाय के अभाव से बहुत वीतरागता प्रकट हो गई है – ऐसे मुनिराज परिषह से नहीं डरते और आत्म साधना से नहीं डिगते। समभाव से आत्मध्यान और स्वाध्याय में लगे रहते हैं।

हे भव्य जीवों ! तुम जैन साधुओं के ऐसे आचरण को देखो और अपनी अनुभूति को पहचानो।

इसप्रकार छह छन्दों में मुनिराज के अट्ठाइस मूलगुण और तीन गुप्तियों का वर्णन किया। अब आगामी छन्द में मुनिराज की अन्य क्रियाओं का वर्णन करेंगे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बारह तपों का स्वरूप

तप तपें द्वादश धरें वृष दश रत्नत्रय सेवें सदा,
मुनि साथ में वा एक विचरें चहें नहिं भव सुख कदा।
यों है सकल संयम चरित सुनिये स्वरूपाचरन अब,
जिस होत प्रकटे आपनी निधि मिटे पर की प्रवृत्ति सब।। ७।।

देखो, यह मुनियों का संयम-आचरण ! वे उपवास, स्वाध्याय आदि बारह प्रकार का तप तपते हैं, उत्तम क्षमा, मार्दव आदि दस प्रकार के धर्म धारण करते हैं तथा रत्नत्रय का सदा सेवन करते हैं; वे मुनियों के संघ के साथ विचरण करते हैं अथवा जिनकल्पी मुनि एकाकी विचरण करते हैं; मोक्षसुख को चाहनेवाले वे मुनिराज भव-सुख को कभी नहीं चाहते।

वाह ! कितनी सुन्दर बात है। मुनिराज भवसुख को नहीं चाहते। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ भी भवसुख को नहीं चाहते। मनुष्य, देव आदि चारों गतियाँ भव हैं, उनमें पुण्यबन्ध के फलस्वरूप बाह्य इन्द्रियसुख मिलता है; परन्तु धर्मी नहीं चाहते; और पुण्य बन्ध के कारणभूत शुभराग को भी धर्मी नहीं चाहते। जिसने मोक्षसुख का स्वाद चखा है, उसे भवसुख की वाञ्छा कैसे हो सकती है ? भवसुख तो जहर के समान है, वास्तव में वह सुख है ही नहीं, दुःख ही है। भवसुख अर्थात् इन्द्रियविषयों की आसक्ति दुःखरूप है, आकुलतामय है। चारों गतियों के इन्द्रियविषयों में सुख नहीं है, दुःख ही है – यह बात आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने प्रवचनसार में अलौकिक न्याय से समझाई है। अरे रे ! जिसके भोग में दुःख मिले और जन्म-मरण हों ऐसे भवसुख को कौन चाहेगा ? मोही अर्थात् अज्ञानी जीव ही विषयों में सुख की भ्रान्ति करते हैं, धर्मी उसमें सुख नहीं मानते। वे देवलोक के वैभव को भी नहीं चाहते। कविवर बुधजनजी ने भी कहा है –

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाचूं नहिं सुरवास पुनि नरराज परिजन साथ जी

जिसे राग में, पुण्य में और उसके फल में सुखबुद्धि होती है, उसकी चाह होती है, वह जीव चैतन्य के मोक्षसुख को नहीं साध सकता। पुण्यजनित सुख संसार में ही होता है, मोक्ष में नहीं। मोक्ष में तो चैतन्यजनित अतीन्द्रिय सुख होता है। जो मोक्ष सुख की श्रद्धा उल्लासपूर्वक करता है, वह जीव निकट भव्य है, वह अल्पकाल में ही मोक्षसुख प्राप्त करेगा।

देखो ! मुनि के सच्चे स्वरूप को जानने में इन सभी बातों का ज्ञान हो जाता है। जो इन्द्रियविषयजन्य भवसुख को नहीं चाहनेवाले मुनि की श्रद्धा करता है, वह स्वयं इन्द्रियविषयों को कभी नहीं चाहता।

रत्नत्रयधर्म द्वारा चैतन्य के महान सुख का अनुभव करनेवाले मुनियों को अन्य सभी विषय सर्वथा नीरस लगते हैं। चैतन्य के निधान को साधने में लीन रहने वाले मुनिराज भवसुख या स्वर्गसुख को नहीं चाहते। ऐसे मुनिराज संघ सहित विचरण करते हैं अथवा किन्हीं को ज्ञानवैराग्य की विशेष सामर्थ्य हो तो वे तीर्थंकरों के समान अकेले विचरण करते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि वस्त्ररहित दिगम्बर होकर विचरण करनेवाले मुनिराज जिनकल्पी हैं, वस्त्रसहित विचरण करनेवाले साधु स्थविरकल्पी हैं, परन्तु यह बात सही नहीं है। भाई ! जैन साधुओं में वस्त्रसहित और वस्त्ररहित – ऐसे भेद नहीं हैं। सभी जैन साधु सदाकाल सर्वथा वस्त्ररहित निर्ग्रन्थ ही होते हैं; इसमें कोई अपवाद नहीं है।

वस्त्र रखने की बात तो बहुत दूर रही, यहाँ तो अन्दर के सूक्ष्म भावों की बात बता रहे हैं। जैन साधु भवसुख अर्थात् संसार के किसी भी सुख को कभी नहीं चाहते, किसी भी राग को नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चाहते। जिसे शुभराग अच्छा लगता है, वह उसके फल में सुख माने बिना नहीं रहता अर्थात् जिसे राग अच्छा लगता है, उसे भवसुख की वाञ्छा हो ही गई। अरे ! मुनि को राग का एक अंश भी बाकी रह जाए तो मोक्ष नहीं होता और दो भव धारण करना पड़ता है। जब वे देवलोक में जन्म लेने के बाद पुनः मनुष्यभव धारण करते हैं, तब माता के अशुचिमय गर्भरूपी जेल में नवमास रहना पड़ता है। अरे रे ! राग के ऐसे फल को कौन चाहेगा ? ऐसे भव को कौन मोक्षार्थी चाहेगा ? यद्यपि सम्यग्दृष्टि को माता के पेट में भी आत्मा का भान वर्तता है, इसलिए उसे उतने अंश में अतीन्द्रिय सुख भी है; तथापि उन्हें जितना राग है, उतना दुःख है। परिपूर्ण सुख तो केवलज्ञान और मोक्ष होने पर होता है।

यहाँ मोक्षसुख के साधक सन्तों की बात चल रही है। वे उग्र शुद्धोपयोग द्वारा शुक्लध्यान प्रकट करके क्षपक श्रेणी चढ़कर केवलज्ञान प्रकट करते हैं और फिर मोक्ष प्राप्त करते हैं – यह बात आगामी पाँच छन्दों में बहुत सुन्दर ढंग से कहेंगे। मोक्ष प्रकट होने के पूर्व ऐसी मुनिदशा होती है। जिसे पहले से ही भवसुख की वाञ्छा पड़ी है, वह मोक्षसुख की साधना का उद्यम क्यों करेगा ?

मुनिराज अपनी शक्ति के अनुसार अनशन, अवमौदर्य तथा स्वाध्याय, ध्यान आदि बारह प्रकार का तप तपते हैं। यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि मुनिदशा में तप के साथ होने वाली शरीर या भोजनादि सम्बन्धी बाह्य प्रवृत्ति, परद्रव्य की क्रिया है, वह मुनि की सच्ची क्रिया नहीं है और निर्जरा का कारण भी नहीं है। मुनि के उपयोग में शुद्धता की वृद्धि ही तप है और वह शुद्ध परिणाम ही निर्जरा का कारण है और यही मुनिराज की धर्मक्रिया है। इसके साथ होने वाले शुभरागरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणाम को उपचार से तप कहा जाता है। यह बात सभी प्रकार के तपों में समझ लेना चाहिए।

चैतन्य की शान्ति में मग्न रहनेवाले मुनिराज ने कषाय का भार दूर कर दिया है और वे उत्तम क्षमा आदि गुणों के विशाल भण्डार सहित मोक्ष की ओर जा रहे हैं।

सम्यग्दर्शन और ज्ञान के पश्चात् मुनिराज को चारित्रधर्म के दस प्रकार होते हैं। वे मुनिराज उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन और ब्रह्मचर्य – इन दस धर्मों को धारण करते हैं।

वे मुनिराज रत्नत्रय के धारक हैं। वे निःशंकित आदि आठ अंग सहित सम्यक्त्व का, विनय-उपधान आदि आठ अंग सहित सम्यग्ज्ञान का और व्रत-समिति-गुप्ति रूप तेरह प्रकार के चारित्र का सदा सेवन करते हैं। देखो यह मुनि की क्रिया ! मोक्षमार्ग में यही क्रिया करने योग्य है। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप क्रिया आत्मा के चिदानन्द स्वभाव में शामिल है, राग में उसका अभाव है। अहा हा ! मुनिराज को आहार करते समय या अल्पनिद्रा लेते समय में भी आत्मा में रत्नत्रय का सेवन चालू है। चलते-फिरते-बोलते तथा उपसर्ग-परिषह के प्रसंगों में भी उन्हें बारह प्रकार के कषायों के अभावपूर्वक रत्नत्रय की आराधना चलती ही रहती है, उनकी अपार शान्ति की क्या-बात कहें ? सम्यग्दृष्टि को मात्र अनन्तानुबन्धी कषायों के अभाव से भी स्वभाव की अपूर्व शान्ति का वेदन होता है। श्रावक को अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यानी इन दो कषाय चौकड़ी के अभाव से विशेष शान्ति का वेदन होता है, उन्हें सर्वार्थ सिद्धि के एकभवावतारी अहमिन्द्रों से भी अधिक शान्ति होती है और मुनिराज को अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरणी और प्रत्याख्यानावरणी क्रोध-मान-माया-लोभ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का अत्यन्त अभाव होने से स्वरूप में एकाग्रता की महान शान्ति का वेदन सदा होता रहता है। उनका आत्मा स्वयं रत्नत्रयधर्मरूप परिणमित हो गया है अर्थात् वे स्वयं रत्नत्रय धर्म हैं।

प्रवचनसार गाथा ६२ में आचार्य कुन्दकुन्द 'यह आत्मा स्वयं धर्म हो – यही मनोरथ है' – ऐसा कहकर कहते हैं ''शुद्धोपयोग के प्रसाद से यह आत्मा स्वयं धर्म हो गया' मनोरथ पूरा हो गया। वीतरागचारित्ररूप परिणमित मेरा आत्मा स्वयं धर्म होकर सदा निष्कम्प रहता है ''देखो तो जरा ! मुनियों की पड़कार ! सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप परिणमित आत्मा स्वयं ही मोक्षमार्ग है।

मोक्षमार्गी मुनिराज भव सुख को नहीं चाहते। चैतन्यसुख की मिठास को जाननेवाले मुनिराज विषयसुख की चिकनाश में क्यों चिपटेंगे ? मुनिराज को चैतन्यसुख के अत्यन्त मधुर स्वाद के सामने इन्द्रिय भोगों का स्वाद उड़ जाता है, उन्हें इन्द्रिय-सुख नहीं ललचा सकते। यद्यपि अविरत सम्यग्दृष्टि को भी भव सुख की वाञ्छा नहीं होती; उन्हें विषयों में सुख बुद्धि नहीं होती; तथापि अभी थोड़ी अस्थिरता के कारण विषयों में परिणाम चला जाता है, जबकि मुनियों का परिणाम तो विषयों से पूरी तरह हटकर चैतन्य सुख में लीन हो गया है। उन्हें तो जगत के विषय लुब्ध प्राणियों को देखकर दया आती है कि अरे रे ! ये अज्ञानी जीव अपने सुख स्वभाव को भूलकर दुःख से व्याकुल होकर विषयों की ओर तेजी से दौड़ रहे हैं। परन्तु उन्हें विषयों में से कभी सुख नहीं मिलेगा। इसप्रकार विषयों से विरक्त मुनिराज भव सुख में नहीं ललचाते, उनका चित्त तो मोक्ष के महान आनन्द में लगा है। मुनिराजों को ऐसी धर्मक्रिया की पहचान होने पर अपनी आत्मा की अनुभूति (स्वरूप) की पहचान भी होती है, रागरूप क्रिया और शुद्ध भावरूप क्रिया में भेदज्ञान होता है और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राग से भिन्न शुद्धात्मा की अनुभूति होती है।

यहाँ तक मुनियों के संयमाचरण का वर्णन किया गया है, अर्थात् उनके आचरण में संयमपूर्वक होने वाली सावधानी का वर्णन किया गया है; अब उनके स्वरूपाचरण का वर्णन सुनो ! जब उनका उपयोग अन्तर्मुख होकर स्वरूप में विचरण करता है तब उनकी आन्तरिक प्रवृत्ति कैसी होती है; सो सुनो !

यह स्वरूपाचरण शुद्धोपयोगरूप है, इसके होने पर अपना केवलज्ञान निधान प्रकट होता है और समस्त पर प्रवृत्ति मिट जाती है। पहले तो उनका उपयोग सातवें छठवें गुणस्थान में आता जाता रहता था; क्षण में अन्दर और क्षण में बाहर, फिर अन्दर इसप्रकार स्वरूप में लीन होकर पुनः बाहर आता था; परन्तु फिर शुद्धोपयोगरूप स्वरूपाचरण द्वारा केवलज्ञान होने पर अब कभी बाहर नहीं आता अर्थात् कभी पर प्रवृत्ति नहीं होती। अब छन्द क्रमांक ८, ९, १० में ऐसे शुद्धोपयोगरूप स्वरूपाचरण का और छन्द क्रमांक ११, १२ में उसके फलरूप केवलज्ञान और मोक्षपद का वर्णन करेंगे।

यहाँ मुनि के जिस स्वरूपाचरण की बात चल रही है, वह सातवें और उससे ऊपर के गुणस्थानों में होने वाली शुद्धोपयोगरूप एकाग्रता की बात है। एक स्वरूप में ही चरण-रमण-लीनता ही स्वरूपाचरण है, जिसके फल में अन्तर्मुहूर्त में ही केवलज्ञान प्रकट होता है। सम्यग्दृष्टि जीव को अनन्तानुबन्धी कषाय का अभाव होने पर चारित्र में जो शुद्धि का अंश अर्थात् आंशिक अकषायभावरूप आचरण प्रकट होता है, वह भी स्वरूपाचरण कहलाता है। यह तो सम्यग्दृष्टि को नरक में भी होता है, बाह्य प्रवृत्ति के समय भी होता है; परन्तु यहाँ जिस स्वरूपाचरण की बात चल रही है, वह मुनियों को ही होता है और उनमें भी यहाँ शुद्धोपयोग द्वारा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निर्विकल्प ध्यान में ठहरे हुए मुनियों की बात है; क्योंकि अब आगे बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञान और मोक्ष तक की बात कहकर यह शास्त्र पूरा करेंगे।

अहा ! उपयोग को अन्तर्मुख करके जब मुनिराज स्वरूप में सातिशयरूप से ठहरते हैं, तब उनका स्वरूपाचरण ऐसा उज्ज्वल शुक्लध्यानरूप होता है कि जिसके प्रताप से चैतन्य खजाने में केवलज्ञान आदि अनन्त निधान प्रकट होते हैं। मुनिराज निर्विकल्प होकर स्वरूप में ठहरते हैं, चैतन्य बाग में अतीन्द्रिय आनन्द का चारा चरते हैं, वे स्वरूप में से कभी बाहर नहीं आते, केवलज्ञान प्रकट करके मोक्ष में जाते हैं।

वाह ! धन्य यह दशा ! ऐसे स्वरूप ध्यानी मुनिराज की ध्यान दशा में क्या होता है, अब इसका अद्भुत वर्णन करेंगे, उसे आनन्द से सुनो !

सिद्धि प्राप्ति का उपाय

जिन परम पैनी सुबुधि छैनी डारि अन्तर भेदिया,
वर्णादि अरु रागादितैं निज भाव को न्यारा किया।
निज माँहि निज के हेतु निजकर आपको, आपै गहयो,
गुण-गुणी ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय मँझार कछु भेद न रहयो।। ८ ।।

इस आठवें छन्द में निर्विकल्प अभेद ध्यान अवस्था का वर्णन किया गया है। जिन्होंने ज्ञानचेतनारूपी अत्यन्त तीक्ष्ण प्रज्ञा छैनी द्वारा अपने शुद्ध चैतन्यतत्त्व को देहादि और रागादि से भिन्न अनुभव किया है और अपने में, अपने लिए, अपने द्वारा, अपने को ही स्वयं ग्रहण किया है अर्थात् अपने ही छह कारकों द्वारा अपना ग्रहण किया है, उन्हें गुण-गुणी अथवा ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान सम्बन्धी कोई भेद नहीं रहा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निर्विकल्प ध्यान में स्थित मुनिराज को ध्याता-ध्यान-ध्येय अथवा कर्त्ता-कर्म-क्रिया का भेद भी नहीं रहता – यह बात आगामी छन्दों में कहेंगे। यहाँ शुद्ध आहार लेना या देखकर चलना आदि आहार-विहार सम्बन्धी क्रियाओं की तो बात ही नहीं है; क्योंकि यह अत्यन्त ऊँची भूमिका की, मात्र ध्यानस्थ अवस्था की बात है। इस स्थिति में मात्र स्व समय में प्रवृत्ति है, बाहर लक्ष ही नहीं जाता।

प्रथम बार सम्यग्दर्शन उत्पन्न होते समय क्षणभर के लिये निर्विकल्प ध्यान दशा होती है, तब गृहस्थ को भी ऐसा अभेद अनुभव होता है। ऐसी अनुभूतिपूर्वक ही सम्यग्दर्शन होता है। कोई कहे कि सम्यग्दर्शन तो हो गया; परन्तु स्वानुभूति नहीं हुई – तो उसकी बात सत्य नहीं है, उसे सम्यग्दर्शन हुआ ही नहीं। सम्यग्दर्शन होने पर चतुर्थ गुणस्थान में भी ऐसी स्वानुभूति तो अवश्य होती है; परन्तु बाद में वह अनुभूति सम्यग्दर्शन के साथ निरन्तर नहीं रहती। मुनिराज को बारम्बार अन्तर में उपयोग की लीनता होकर अभेद अनुभूति रहती है। यहाँ उनकी ध्यानस्थ दशा का वर्णन चल रहा है।

धर्मी जीव स्वयं को 'मैं मनुष्य हूँ' – इसप्रकार शरीररूप अनुभव नहीं करते तथा 'मैं क्रोधी हूँ, मैं रागी हूँ' – इसप्रकार रागादिरूप अनुभव नहीं करते; परन्तु वे देहादि और रागादि को सूक्ष्म अतीन्द्रियज्ञान रूपी प्रज्ञाछैनी द्वारा आत्मा से भिन्न करके शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभावरूप अपने स्वरूप का चिन्तन करते हैं और अपने ज्ञान स्वभाव को ही अपने ज्ञान में स्वज्ञेयरूप से ग्रहण करते हैं। उस समय 'मैं जानने वाला और यह मेरा ज्ञेय' – ऐसा भेद या विकल्प नहीं रहता। ऐसा ध्यान केवलज्ञान का कारण है।

देखो, यह आत्मा का ध्यान करने की रीति ! जिसे अभी देह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और राग से आत्मा की भिन्नता समझ में नहीं आती; उसे ऐसा ध्यान कैसे होगा ?

प्रत्येक आत्मा अपने अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द के निधान से सम्पन्न है। बाह्य शुभ वृत्ति पुण्य बन्ध का कारण है और अशुभ वृत्ति पापबन्ध का कारण है; ये दोनों अशुद्ध-उपयोग के भेद हैं, उनके द्वारा चैतन्यतत्त्व में प्रवेश नहीं होता। चैतन्य का अन्तर-व्यापार तो पुण्य-पाप रहित है, यही अशुद्धोपयोग है। सर्वप्रथम ऐसा शुद्धोपयोग होता है; तभी सम्यग्दर्शन प्रकट होता है। एकाकार आनन्द स्वरूप आत्मा का ध्यान कर जिसने रागरहित सुबुद्धिरूपी तीक्ष्ण छैनी द्वारा रागादि और वर्णादि रहित चैतन्य स्वभाव को भिन्न जाना, वह धर्मी स्वयं ही स्वयं में स्वयं को भेद रहित ध्याता है – ऐसा शुद्धोपयोग ही धर्म है। इसमें कोई विकल्प या भेद नहीं रहता। चैतन्य प्रभु आत्मा अपने चैतन्यभावरूप ही रहता है, उसकी चैतन्यक्रिया भी उसी में अभेद है, उसमें कर्त्ता-कर्म-क्रिया का भेद नहीं रहता। धर्मी को जब सम्यग्दर्शन हुआ था तब ऐसा शुद्धोपयोग हुआ था उसके बाद भी वे कभी-कभी ऐसे शुद्धोपयोगरूप ध्यान द्वारा निर्विकल्प आनन्द का साक्षात् अनुभव करते थे। इस अनुभव में रागरूप आचरण नहीं है; अपितु जैसा शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, वैसा ही उसका आचरण है। इसे स्वरूपाचरण भी कहते हैं, उसका अंश चौथे गुणस्थान में प्रारम्भ होता है। छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि को भी जितना वीतरागी स्वरूपाचरण है, उतना धर्म है और जितना व्रतादि का राग शेष है, वह धर्म नहीं है।

शरीर, मन, वाणी तो जड़ हैं, पुद्गल हैं, अचेतन हैं, अतः वे आत्मा से अत्यन्त भिन्न हैं। अपने में उत्पन्न होनेवाला शुभ या अशुभ भाव अशुद्ध उपयोग है, वह निज भाव नहीं है, परभाव है। चैतन्य स्वभाव में एकाग्र होने पर वर्णादि और रागादि से भिन्न

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपने निज स्वभाव को ग्रहण करनेवाला उपयोग शुद्धोपयोग है। मैं ज्ञान, मैं ज्ञाता या मैं ज्ञेय – ऐसे तीन भेद भी शुद्धोपयोग में नहीं हैं, उसमें एकाकार आत्मा का अभेद अनुभव वर्तता है।

ऐसा अनुभव कैसे होता है ? यह बात इस छन्द में बताई जा रही है।

अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाली सुबुद्धि रूपी छैनी द्वारा भेदज्ञान करने पर ऐसा अनुभव होता है। प्रज्ञा छैनीरूपी ज्ञानचेतना रागरहित है, अतीन्द्रिय है, अत्यन्त सूक्ष्म है इसलिये उसे परम धारवाली कहा है। राग या इन्द्रिय ज्ञान स्थूल है, वह चैतन्य को नहीं पकड़ सकता, भेदज्ञान नहीं कर सकता। शुद्धोपयोगरूप तीक्ष्ण अतीन्द्रिय ज्ञान ही चैतन्य को पकड़ सकता है; वही मोक्ष का कारण है।

शुद्धोपयोग ने राग और देह की क्रिया से अपने को न्यारा किया है। भेदज्ञान द्वारा ऐसी भिन्नता करके चैतन्य का ग्रहण करना स्वरूपाचरण क्रिया है। देखो, यह मुनिवरों की मोक्ष की क्रिया ! लोग पूछते हैं कि आप क्रिया में धर्म मानते हैं ? हाँ ! हम राग रहित क्रिया को धर्म मानते हैं। राग की क्रिया या जड़ की क्रिया मोक्ष का कारण नहीं है।

मेरो सुशाश्वत एक दर्शन-ज्ञान लक्षण जीव है।
बाकी सभी संयोग लक्षण भाव मुझसे बाह्य हैं।।

ऐसी अनुभूति शुद्धोपयोग द्वारा होती है। स्वयं अपने को रागरहित प्रत्यक्ष अनुभव करे – ऐसी शक्ति आत्मा में है। अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा अनन्त शक्ति का स्व संवेदन करे, आत्मा का ऐसा त्रिकाली स्वभाव है, उसमें राग का आलम्बन नहीं है। ऐसे आत्मा का अनुभव सच्चा अनुभव है। ऐसा अनुभव भूतार्थ है, सत्यार्थ है, सम्यग्दर्शन है, स्वरूपाचरण है, अतीन्द्रिय आनन्द है, मोक्षमार्ग है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यही जैन शासन है। ऐसी अनुभूतिपूर्वक ही चतुर्थ गुणस्थान प्रारम्भ होता है और बाद में उस जीव को अधिक काल बाद कभी-कभी निर्विकल्प शुद्धोपयोग रूप ध्यान दशा होती है; परन्तु वह विशेष (ज्यादा देर) नहीं टिकती।

पञ्चम गुणस्थान में ऐसी ध्यान दशा थोड़े-थोड़े समय में आती है और विशेष काल तक टिकती है।

मुनियों को तो बारम्बार अन्तर्मुहूर्त में ही शुद्धोपयोग होता रहता है और उसमें लीनता भी बहुत होती है।

सातवें गुणस्थान के बाद तो मात्र शुद्धोपयोगरूप लीनता ही है और इसी से केवलज्ञान की साधना होती है।

इसप्रकार शुद्धोपयोग के बिना किसी जीव को धर्म की शुरुआत या पूर्णता नहीं होती। यह शुद्धोपयोग रूप स्वरूपाचरण ही आत्मा की अनन्त ज्ञान-आनन्दस्वरूप निधियाँ प्रकट करने का उपाय है। वहाँ पर की ओर लक्ष्य ही नहीं होता; इसलिये परभाव रूप कोई प्रवृत्ति नहीं होती, अपने निधान पर ही नजर रहती है।

भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान-दर्शन की निधि है। पुण्य-पाप या धन-वैभव या इन्द्र-चक्रवर्ती पद आत्मा की निधि नहीं हैं। केवलज्ञान और सिद्धपद से भरपूर अनन्त निधान स्वरूप आत्मा में दृष्टि करके उसमें उपयोग एकाग्र करने पर वह निधान खुल जाता है; आत्मा स्वयं परमात्मा हो जाता है।

जिसप्रकार लेंडी पीपर में चरपरा (तीखा) स्वभाव भरा हुआ है, उसे पीसने से वह स्वयं चौंसठ पुटी चरपराहट रूप में प्रकट हो जाती है। वह चरपराहट बाहर से नहीं आती। उसीप्रकार चैतन्य स्वरूप आत्मा में अनन्त ज्ञान-आनन्द स्वभाव भरा है; अन्तर में ध्यान द्वारा उसे घोंटने पर (उसमें एकाग्रता करने पर) आत्मा स्वयं ही केवलज्ञान और परमानन्दरूप परिणमित हो जाता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। वह ज्ञान और आनन्द परद्रव्यों में से नहीं आता और कोई परद्रव्य उसका साधन भी नहीं है। आत्मा स्वयं ही राग से भिन्न होकर, शुद्धोपयोगरूप होकर स्वयं ही साधन और साध्यरूप होकर अपूर्व आनन्दरूप परिणमित हो जाता है। यही मोक्ष की रीति है। इसके अलावा शुभराग या अन्य किसी रीति से आत्मा के निधान प्रकट नहीं होते। सम्यग्दर्शन प्रकट करने की भी यही रीति है। केवलज्ञान और सम्यग्दर्शन, इन दोनों की एक ही जाति है और इनका उपाय भी एक ही जाति का (रागरहित) है। भाई ! पहले अपने हित के मार्ग का तो निर्णय कर कि सम्यग्दर्शन से लेकर केवलज्ञान तक का यही मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं।

शुद्धोपयोग स्वप्रवृति है और राग परप्रवृत्ति है। स्वद्रव्य में प्रवृत्ति द्वारा ही सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धपद की प्राप्ति होती है और परद्रव्य में प्रवृत्ति से संसार होता है। पर में प्रवृत्ति करने से स्व में भरे हुए निधान प्रकट नहीं होते। जहाँ निधान भरे हैं, उसमें प्रवृत्ति से ही वे निधान प्रकट होंगे। भगवान् ! तेरे निधान कैसे हैं और वे कैसे प्रकट होते हैं – इसका निर्णय तो कर ! निधान के सम्मुख होने पर ही वे प्रकट होते हैं; अन्य किसी के सामने देखने पर वे प्रकट नहीं होते। अपने निधान प्रकट करने के लिये यदि पर के सामने देखना पड़े या पर की सहायता लेना पड़े; तब तो आत्मा पराधीन हो गया, स्वाधीन-मुक्त न रहा।

धर्मधुरन्धर तीर्थंकर भगवन्तों ने अपने दिव्य उपदेश में यही कहा है कि हे भव्य ! तू सुन ! सावधान होकर सुन ! तेरे चैतन्य निधान स्वाधीन रूप से तुझमें भरे हैं, उनका अनुभव करके प्रकट करने का साधन भी तू स्वयं है। अपने स्वभाव के अवलम्बन से ही आत्मा स्वयं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और मोक्षरूप परिणमित होता है; उसमें अंशमात्र भी परालम्बन नहीं है। हम ऐसे ही उपाय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

से परमात्मा हुए हैं और परमात्मा होने के लिये तुम भी ऐसा उपाय करो।

आचार्य कुन्दकुन्ददेव प्रवचनसार गाथा १०० में कहते हैं –

सर्व ही अरहन्त ने विधि नष्ट कीने जिस विधी।
सबको बताई वही विधि हो नमन उनको सब विधी।।

भगवान तीर्थंकर से लेकर अव्रत सम्यग्दृष्टि तक सभी जीवों ने मुक्ति का यही मार्ग बताया है। अन्तर में चैतन्यस्वभाव का आश्रय करने से ही कल्याण होता है, चैतन्य निधि प्रकट होती है। रागादि बहिर्भावों की प्रवृत्ति से चैतन्य निधि प्रकट नहीं होती। तीर्थंकर भगवान महावीर ने यही मार्ग बताया था और विदेह क्षेत्र में सीमन्धर आदि बीस तीर्थंकर परमात्मा यही मार्ग प्रकाशित कर रहे हैं। सर्वज्ञ परमात्मा के मार्ग पर चलनेवाले गौतमस्वामी आदि गणधर, भद्रबाहुस्वामी, कुन्दकुन्दाचार्य, समन्तभद्राचार्य, पूज्यपाद स्वामी, अमृतचन्द्राचार्य, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, अकलंकस्वामी आदि महान धर्म धुरन्धर सन्तों ने दिगम्बर जैन परम्परा में यही शुद्धमार्ग टिका रखा है; आज भी यही मार्ग चल रहा है।

जिन परमपैनी सुबुधि छैनी डारि अन्तर भेदिया।

जीव सुबुद्धिरूपी तीक्ष्ण छैनी द्वारा अन्तर में भेदज्ञान करके निज स्वभाव को रागादि से भिन्न करते हैं, जानते हैं। चौथे गुणस्थान में भी ऐसी अतीन्द्रियज्ञान चेतना होती है। पण्डित टोडरमलजी ने रहस्यपूर्ण चिट्ठी में सविकल्प द्वार में से निर्विकल्प होने की बात की है, वह भी चतुर्थ गुणस्थान में सम्यग्दर्शन की बात है अर्थात् चौथे गुणस्थान में ऐसा निर्विकल्प शुद्धोपयोग होता है – ऐसा समझना चाहिये।

अरे ! ज्ञान क्या है और राग क्या ? इन दोनों को अत्यन्त भिन्न जाने बिना धर्म का प्रारम्भ कैसे हो सकता है ? जो बन्ध

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाव से आत्मा को भिन्न न जाने, वह बन्ध को छेदकर मुक्त कब होगा ?

इस छन्द में 'जिन' शब्द का प्रयोग किया है। 'जिन' अर्थात् जिसने। यहाँ अकेले वीतरागी मुनिराज की बात नहीं की; परन्तु चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि को भी ऐसा भेदज्ञान होता है – ऐसा जानना चाहिये। यद्यपि यहाँ मुनि की प्रधानता है; तथापि अव्रत सम्यग्दृष्टि का निषेध नहीं समझना चाहिये, गौणरूप से उनका ग्रहण भी समझ लेना चाहिये; क्योंकि उन्हें भी एक बार निर्विकल्प स्वानुभूति सहित ऐसा भेदज्ञान हो चुका है।

समयसार कलश ३७ में भी वर्णादि और रागादि से भिन्न चैतन्य स्वभाव की बात की है –

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा, भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी, नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात्।।

वर्णादि और राग, मोहादि सभी भाव इस पुरुष अर्थात् शुद्धात्मा से भिन्न हैं; इसलिये तत्त्वदृष्टि अर्थात् अन्तर में देखनेवाले शुद्धस्वरूप के अनुभवशील जीवों को वे भाव अपने में नहीं दिखते, उन्हें सर्वोपरि ऐसा शुद्ध आत्मा ही दिखता है, अनुभव में आता है।

यहाँ पण्डित दौलतरामजी ने यही बात की है। उन्होंने पहली ढाल ही में कहा था कि मैं पूर्वाचार्यों-मुनिराजों के कहे अनुसार ही इस छहढाला में कहूँगा। **'पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।'** यह ग्रन्थ छोटा होने पर भी इसमें गागर में सागर के समान प्रयोजनभूत सार भर दिया है।

यहाँ तीक्ष्ण प्रज्ञा छैनी की बात समयसार के मोक्षधिकार में समागत कलश १८१ के आधार पर आई है। वह कलश निम्नानुसार है –

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रज्ञा छेत्री शितेयं कथमपि निपुणैः पातिता सावधानैः
सूक्ष्मेऽन्तःसन्धिबन्धे निपतति रभसादात्मकर्मोभयस्य।
आत्मान मग्नमंतःस्थिरविशदलसद्धाग्नि चैतन्यपूरे
बन्धं चाज्ञानभावे नियमितमभितः कुर्वती भिन्नभिन्नौ।।

उपयोग लक्षणवाला आत्मा और रागादि लक्षणवाला बन्ध, दोनों भिन्न-भिन्न हैं। एक स्थान पर रहते हुए भी उनमें एकता नहीं है, भाव की अपेक्षा उनमें भिन्नता है। उनमें निकटता होने पर भी एकता नहीं है। उनके बीच साँध (जोड़) है। निपुण पुरुष उनके लक्षणों द्वारा उन्हें भिन्न जानकर अत्यन्त एकाग्रतापूर्वक सावधानी से उनकी साँध (जोड़) में अत्यन्त तीक्ष्ण प्रज्ञाछैनी का वज्र प्रहार करके उसी क्षण आत्मा और बन्ध को सर्वथा भिन्न-भिन्न कर देते हैं। इसप्रकार प्रज्ञाछैनी द्वारा आत्मा और बन्ध को सर्वथा भिन्न करके ज्ञानी अपने को स्थिर रूप से शोभित चैतन्य तेज में लीन करते हैं और रागादि बन्ध भावों को ज्ञान से बाहर रखते हैं।

देखो, यह सिद्धि प्राप्ति का उपाय ! मोक्षगामी भव्य जीव चैतन्य स्वरूप आत्मा और रागादि बन्ध भावों को भेदज्ञान द्वारा भिन्न अनुभव करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं, उनकी भिन्नता को जानकर सम्यग्ज्ञान प्राप्त करते हैं और प्रयोग द्वारा उनकी भिन्नता करते-करते सम्यक्चारित्र प्राप्त करते हैं और अन्त में उन्हें सर्वथा भिन्न करके केवलज्ञान और सिद्धपद प्राप्त करते हैं। मुक्ति प्राप्त करने का यही एक उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। शुभराग द्वारा कोई जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अथवा केवलज्ञान और सिद्धपद नहीं प्राप्त करते।

यह जीव रागादि परभावों के साथ चैतन्य स्वभाव की एकताबुद्धि अर्थात् भेदज्ञान के अभाव से ही संसार में भ्रमण कर रहा है और उपयोग स्वरूप आत्मा और रागादि की भिन्नता के ज्ञानरूप भेदज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त करता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भेदज्ञान होने के बाद उपयोग को विशेष अन्तर्मुख करके आत्मा का ध्यान करते-करते मुनियों की राग प्रवृत्ति छूट जाती है। व्रतादि के शुभराग या बाह्य प्रवृत्ति से मोक्षमार्ग नहीं टिकता; क्योंकि वह तो परभाव की प्रवृत्ति है। मुनिराज उसे छोड़कर स्वद्रव्य में प्रवृत्ति करके केवलज्ञान को साधते हैं।

शुद्ध चैतन्यमूर्ति आत्मा स्वयं ही स्वयं से स्वयं के साधन से अपना अनुभव करते हैं, उसमें राग का अवलम्बन या साधन नहीं है। उस अनुभव के फल में होनेवाला आनन्द भी अपने में है। उसका फल बाहर नहीं है अर्थात् उससे पुण्य बन्ध नहीं होता। पुण्य का बन्ध और स्वर्ग की प्राप्ति तो राग का फल है, आत्मानुभूति का फल नहीं। जो अपने आत्मा को छोड़कर किसी भी पर पदार्थ में राग से कल्याण मानता है, उसे जैनमार्ग की खबर नहीं है; उसने मार्ग को ही विपरीत माना है।

भाई ! यह तो स्वयं अपना कल्याण करने की बात है, दूसरों के लिये यह बात नहीं। सत्य समझकर स्वयं अपना कल्याण करले ! अत्यन्त धैर्य, पर से विमुखता और स्वभाव की सावधानी से साधने योग्य इस मार्ग का प्रयोजन सम्यक्त्वादि निज भावों की प्राप्ति करना है। एक बार यह सुन्दर मार्ग लक्ष्य में तो ले, इसका निर्णय तो कर ! लक्ष्य सच्चा होगा तो ध्येय तक अवश्य पहुँचायेगा। मोक्ष होने पर राग तो छूट जाता है, फिर वह मोक्ष का साधन कैसे हो सकता है ? राग रहित शुद्धोपयोग ही सम्यग्दर्शन से लेकर केवलज्ञान तक का साधन है।

यह तो वीतरागी सन्तों द्वारा स्वयं अपनाई हुई और भव्य जीवों के लिये कही गई धर्म की सरल रीति है, इसे समझने पर वाद-विवाद के लिए कोई स्थान नहीं रहता।

भेदज्ञान द्वारा आत्मा ने स्वयं अपने ज्ञायक स्वभाव को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपना मानकर जब उसका परिग्रह किया अर्थात् उसका ग्रहण करके अनुभव किया तभी 'मैं रागादि हूँ' – ऐसी परभाव की पकड़ रूप परिग्रह छूट जाता है और स्वद्रव्य में प्रवृत्ति से संवर-निर्जरा-मोक्ष प्रकट हो जाता है। राग द्वारा जीव अपना ग्रहण नहीं कर सकता; राग द्वारा अनुभव किया जा सके – ऐसा उसका स्वरूप ही नहीं है; वह तो अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा ही अनुभव में आता है। आत्मा राग को ग्रहण नहीं करता, राग द्वारा ग्रहण नहीं करता, स्वयं अपने को अपने द्वारा ग्रहण करता है, जानता है, अनुभव करता है; यही शुद्धोपयोग है। इसप्रकार मुनिराज शुद्धोपयोग द्वारा स्वरूप में प्रवृत्ति करते-करते मुक्ति प्राप्त करते हैं।

आज सोनगढ़ में स्थित सीमन्धर स्वामी दिगम्बर जिनमन्दिर को बने २५ वर्ष पूरे हुए हैं।[१] यहाँ सीमन्धर भगवान की प्रतिष्ठा आज से २५ वर्ष पूर्व हुई थी। उन्होंने समवशरण में क्या कहा? वही बात यहाँ बताई जा रही है।

विदेहक्षेत्र में विहरमान सीमन्धरादि तीर्थंकरों ने और यहाँ भरतक्षेत्र में हुए महावीर भगवान तथा महान ज्ञानी सन्तों ने यही आदेश दिया है कि चैतन्य स्वरूप आत्मा को भेदज्ञानरूपी तीक्ष्ण प्रज्ञाछैनी द्वारा रागादि और वर्णादि से भिन्न अनुभव करनेवाले को ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और मोक्ष होता है। वह प्रज्ञाछैनी शुद्धोपयोगरूप है। आत्मा शुद्धोपयोग द्वारा आत्मा को ग्रहण करे – यही स्वरूपाचरण है, मोक्षमार्ग है, इसी में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है; ये तीनों आत्मा में आचरणरूप हैं। रागरूप आचरण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं है।

राग रहित चैतन्य स्वरूप में एकाग्र होने पर जितना रागरहित अबन्धभाव प्रकट हुआ, उतना मोक्षमार्ग है और जितना भाग शेष

---

१. विक्रम सम्वत् १९६७ फागुन सुदी द्वितीया

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहा; वह बन्धमार्ग है, मोक्षमार्ग नहीं। वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग तो ज्ञानानन्द स्वरूप के आश्रय से ही होता है, पर के आश्रय से नहीं और उस मोक्षमार्ग से कोई कर्म बन्धन नहीं होता। जिस भाव से कर्म बँधते हैं वह मोक्षमार्ग नहीं होता और जो मोक्षमार्ग है, उससे कर्म नहीं बँधते।

देखो भाई ! शुभाशुभ रागरहित आत्मा का अनुभव करना ही आत्मा की शान्ति अथवा मोक्षमार्ग की रीति है। आज तक जीव ने ऐसा अनुभव नहीं किया। सम्यग्दर्शन होने पर शुद्धोपयोग द्वारा आत्मा का अनुभव हुआ अर्थात् जीव धर्मात्मा हुआ।

धर्मात्मा जीव वैराग्य भावनापूर्वक मुनि होकर बारम्बार जब अपने ज्ञानस्वरूप में उपयोग जोड़कर आत्मा का अनुभव करता है तब उस अनुभूति में गुण-गुणी के भेद का विकल्प नहीं रहता। जिसप्रकार बर्फ सर्वत्र शीतलता का पिण्ड है; उसीप्रकार शान्ति के हिमालय स्वरूप आत्मा की अनुभूति में सर्वत्र परम शान्तिरूप शीतलता का वेदन होता है, उसमें कोई आकुलता नहीं होती।

जिसप्रकार मूर्त्तिक रूप (वर्ण) पुद्गल का स्वरूप है; उसीप्रकार अरूपी होने पर भी चैतन्यरूप आत्मा का स्वरूप है। आत्मा अरूपी है; इसलिए उसका कोई अपना स्वरूप ही नहीं है – ऐसा नहीं है। अरूपी होने पर भी उसका अपना स्वरूप है और वह ज्ञान; आनन्द आदि अनन्त गुणों के वैभव से ठसाठस भरा हुआ है। 'मैं स्वयं ऐसे चैतन्य स्वभाववाला परम शान्ति का पिण्ड हूँ' – ऐसा जानकर स्वयं अपने में एकाग्र होना शुद्धोपयोग है, वहाँ शुद्धात्मा में प्रवृत्ति है और उस समय आत्मा स्वयं शीतलनाथ भगवान जैसा होकर परम शीतलता का अनुभव करता है। अपने अनुभव की परम शान्ति अपने में समाती है, वह पुण्य-पाप में नहीं जाती और उस शान्ति में राग नहीं समाता। उस शान्ति का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनुभव राग से बिल्कुल भिन्न है।

चैतन्यस्वरूप आत्मा की क्रिया और जड़ शरीर की क्रिया भिन्न-भिन्न है। चैतन्यस्वभाव का स्वाद और रागादि का स्वाद भिन्न-भिन्न है। ऐसे भेदज्ञान द्वारा शुद्धात्मा का अनुभव कर-करके ही अनन्त जीव सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं और होंगे। समयसार कलश १३१ में आचार्य अमृतचन्द्र कहते हैं –

अब तक तो जो भी हुए सिद्ध या आगे होंगे।
महिमा जानो एकमात्र सब भेदज्ञान की।।
और जीव जो भटक रहे हैं भवसागर में।
भेदज्ञान के ही अभाव से भटक रहे हैं।। १।।[1]

शुद्धात्मा का अनुभव शरीर-मन-वाणी द्वारा नहीं होता, देव-गुरु-शास्त्र के सामने देखने से नहीं होता, शुभ विकल्पों द्वारा नहीं होता और इन्द्रियज्ञान द्वारा भी नहीं होता; चैतन्यस्वरूप आत्मा इन सबसे पार होकर स्वयं अतीन्द्रिय शुद्धोपयोगरूप होकर अपने द्वारा अपना अनुभव करता है – यही मोक्षमार्ग का आचरण है और यही शुद्ध धर्म की क्रिया है। यही भगवान का सन्देश और आदेश है।

आज जिनमन्दिर में मूलनायक सीमन्धर भगवान पधारे हैं। अन्तर के अनुभव-मन्दिर में मूलनायक अपना शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा है। वही मूल है, मुख्य है, उसी को अन्तर में पधराओ, उसी को ध्याओं। यहाँ मूलनायक के रूप में तो सीमन्धर भगवान की स्थापना है; परन्तु साक्षात् भावरूप सीमन्धर परमात्मा अभी महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं। उसका शरीर पाँच सौ धनुष ऊँचा है और आयु एक करोड़ पूर्व की है। उन्होंने शुद्धोपयोग द्वारा केवलज्ञान प्राप्त किया है। विदेह में विचरने वाले भगवान

---

१. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत समयसार कलश पद्यानुवाद

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्थापना निक्षेप द्वारा यहाँ पधारे हैं। धर्मात्मा जीव के अन्तर में भी परमात्मा विराजते हैं। अपने स्वभाव की चैतन्यमर्यादारूप सीमा का धारक अपना आत्मा परमार्थ से स्वयं सीमंधर है।

आत्मस्वरूप में झूलनेवाले महान वीतरागी सन्त कुन्दकुन्दाचार्य देव विदेह में सीमंधर भगवान के पास गए थे। उन्होंने पंच परमागम की रचना करके इस भरतक्षेत्र में तीर्थंकर जैसा काम किया है और अलौकिक टीका द्वारा उन परमागमों का रहस्य खोलकर आचार्य अमृतचन्द्र ने गणधर जैसा काम किया है। समयसार ग्रन्थ और उसकी आत्मख्याति टीका भरतक्षेत्र में अद्वितीय है, महान उपकारी है, उसमें भगवान आत्मा के अनुभव की बात है। इस जीव ने और तो सब किया, वह कुछ भी अपूर्व नहीं है, आत्मा का अनुभव ही अपूर्व है, उसी से मोक्षमार्ग प्रकट होता है।

ऐसा आत्मानुभव चतुर्थ गुणस्थान से होता है। उसमें 'मैं ज्ञाता और मेरा आत्मा मेरा ज्ञेय' ऐसा भेद-विकल्प भी नहीं होता, उसमें गुण-गुणी भेद आदि विकल्पों से छूटकर निर्विकल्पता की परमशान्ति का वेदन होता है। ऐसी अनुभूति के बिना मात्र ऊपरी शास्त्रज्ञान से आत्मा का पता नहीं लगता। शुद्धोपयोग द्वारा ऐसी अनुभूति होने पर ही दर्शन और ज्ञान सम्यक् हो जाते हैं और शास्त्रों का गम्भीर रहस्य समझ में आता है। यद्यपि अभी अव्रत सम्यग्दृष्टि की तीन कषाय बाकी हैं; परन्तु श्रद्धा, ज्ञान तो उससे भिन्न होकर स्वरूप में ढल गए हैं, उनमें किञ्चित् मात्र भी कषाय नहीं है।

गुण-गुणी भेद का सर्वाधिक ऊँचा और अन्तिम व्यवहार भी अभेद के लक्ष्य में नहीं रहता तो अन्य रागादि स्थूल व्यवहार की क्या बात कहें ? 'ज्ञान आत्मा है' – ऐसा भेद भी जिस स्वानुभूति में नहीं रहता तो 'राग आत्मा है' और 'शरीर आत्मा है, – यह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बात कहाँ रही ? धर्मी को ऐसे आत्मा की शुद्ध दृष्टि सदा रहती है। उनका उपयोग बाहर हो और शुभाशुभ राग होते हों, तब भी उनके श्रद्धा-ज्ञान राग से भिन्न रहकर परिणमित होते हैं और फिर ध्यान के द्वारा स्वरूप स्थिरता बढ़ने पर मुनिदशा, क्षपक श्रेणी और केवलज्ञान होता है। इन सबका कारण एक शुद्धोपयोग ही है। यह जीव व्रतादि का शुभराग करके अनन्तबार स्वर्ग गया; परन्तु वहाँ सुखी नहीं हुआ। यदि स्वर्ग में जरा भी सुख होता तो वहाँ सुख क्यों नहीं मिला ? इसलिए वह राग की क्रिया और स्वर्ग के विषय दुखरूप ही हैं; उनसे भिन्न भगवान आत्मा स्वयं सुख स्वरूप है, श्रद्धा-ज्ञान में उसे ग्रहण करने पर अतीन्द्रिय सुख का अनुभव होता है।

आनन्द ब्रह्मणो रूपं निज देहे व्यवस्थितम् – इस देह में रहनेवाला ब्रह्मस्वरूप आत्मा स्वयं आनन्दस्वरूप है, अन्तर में ध्यान द्वारा उसे देखने पर आनन्द का अनुभव होता है। जिसमें आनन्द का वेदन न हो, उसे धर्म कौन कहे ? राग के वेदन में आत्मा का आनन्द नहीं है। पापभावरूप राग हो या पुण्यभावरूप राग हो – ये दोनों चैतन्य के आनन्द से विपरीत हैं, अशुचिरूप हैं, दुःखरूप हैं, भगवान आत्मा स्वयं शुचिरूप है, सुखरूप है और चेतकभावरूप है – ऐसा भेदज्ञान करके स्वयं में स्थिर होना, संसार से पार होकर सिद्धपद प्राप्त करने का उपाय है और यही धर्म है।

धर्म से कर्मबन्ध नहीं होता और जिससे कर्मबन्ध हो, वह धर्म नहीं है। धर्म और कर्म दोनों की जाति जुदी है अरे ! यदि धर्म से भी कर्मबन्ध हो तो आत्मा छूटेगा कब ? मुक्ति किससे होगी। शुभराग से भी तीर्थंकर प्रकृति बँधती है; इसलिए वह धर्म नहीं है, वह तो आस्रव है, उसका फल संसार है। उस समय जो श्रद्धा-ज्ञानरूप शुभभाव है, वह राग रहित होने से अबन्धस्वरूप है और उसका फल मोक्ष है। आस्रव और धर्म दोनों भावों को भिन्न-भिन्न जानना चाहिए।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तीक्ष्ण प्रज्ञा छैनी द्वारा ज्ञान और राग की भिन्नता पहचानकर, ज्ञान को आत्मा में एकाग्र करके आत्मा का ध्यान करना शुद्धोपयोग है। यही मोक्षमार्गी मुनिवरों का स्वरूपाचरण है। ऐसे स्वरूपाचरण के समय होनेवाली मुनिराज की अन्तर्दशा का विशेष वर्णन आगामी छन्द में करेंगे।

मुनिराज के स्वरूप का विशेष वर्णन

जहाँ ध्यान-ध्याता-ध्येय ने विकल्प वच भेद न जहाँ,
चिद्भाव-कर्म चिदेश-कर्त्ता चेतना-किरिया तहाँ।
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध-उपयोग की निश्चल दशा,
प्रकटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत ये तीनधा एकै लसा।। ६।।

जिन्हें केवलज्ञान होने की तैयारी है – ऐसे मुनियों की दशा कैसी अद्भुत और अलौकिक होती है। जहाँ ध्यान-ध्याता-ध्येय एकाकार है, उसमें कोई भेद नहीं है, विकल्प नहीं, वचन-विकल्प नहीं है, वह अनुभूति वचनातीत है, विकल्पातीत है। वहाँ आत्मा का चैतन्यभाव स्वयं कर्म है चैतन्य परमेश्वर आत्मा स्वयं कर्त्ता है और आत्मा की चेतना ही क्रिया है – इसप्रकार मुनिराज की स्वानुभूति में कर्त्ता-कर्म-क्रिया तीनों अभेद हैं, उनमें भिन्नता नहीं हैं, तीनों ही चैतन्यरूप हैं। शुद्धोपयोग की इस निश्चलदशा में तीनों अभिन्न (भेद रहित) और अखिन्न (खेद रहित) हैं। उपयोग स्वरूप में एकाग्र हुआ, अब वह चलित नहीं होता, निश्चल रहता है, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों एकरूप शोभित होते हैं। दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद में शोभा नहीं है, उनकी एकता में, अभेद अनुभूति में ही शोभा है। ऐसी अनुभूति में लीन होकर मुनिराज केवलज्ञान की साधना कर रहे हैं, मानो उसे बुला रहे हों। यही उनका स्वरूपाचरण है।

वीतरागी मुनिराज स्वरूपाचरण द्वारा जब आत्मध्यान में लीन होते हैं; तब ध्यान-ध्याता-ध्येय का भेद नहीं रहता। वहाँ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कर्त्ता-कर्म और क्रिया तीनों अभिन्नरूप से आत्मा ही हैं। शुद्धोपयोग की निश्चल दशा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों एकरूप शोभित होते हैं। उस समय के आनन्द की क्या बात कहना। मुनिराज उग्रपुरुषार्थ द्वारा केवलज्ञान का दरवाजा खोल रहे हैं। बस अभी केवलज्ञान प्रकट हो जायेगा ?

स्वरूपाचरणचारित्र में मात्र स्वानुभूति का रस बरसता है। सम्यग्दृष्टि को भी स्वानुभूति के काल में अनन्त गुणों का सागर आत्मा अपने आनन्द आदि गुणों की चमत्कारिक स्वाभाविक पर्यायों में रमण करता हुआ प्रकट होता है। यह निर्विकल्प दशा अद्भुत है, वचनातीत है। यह दशा प्रकट होने पर सारा जीवन ही पलट जाता है। सम्यग्दृष्टि की स्वानुभूति की ऐसी महिमा है तो मुनिराज की स्वानुभूति की क्या बात ?

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के समय अव्रती गृहस्थ को भी ध्याता-ध्यान-ध्येय या ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय के विकल्पों से रहित एक अखण्ड चैतन्यमात्र वस्तु का ऐसा ही अनुभव होता है। तत्त्ववेदी जीव को बद्ध-अबद्ध आदि विकल्पों से पार शुद्ध चैतन्य का अनुभव होता है, यही समयसार है। सम्यग्दर्शन भी यही है, सम्यग्ज्ञान भी है, आनन्द भी यही है। विशेष क्या कहें ? आत्मा का सर्वस्व उसमें समा जाता है।

समयसार गाथा १४४ में यह बात बहुत अच्छी तरह समझाई है। वह गाथा सम्यग्दर्शन उत्पन्न करने की विधि बताती है। अपने ज्ञानस्वभाव का निश्चय करके ज्ञान को अन्तर्मुख करते ही भगवान आत्मा आनन्द सहित प्रकट अनुभव में आता है; उसमें सम्यग्दर्शन आदि अनन्तभाव समा जाते हैं। यही समय का सार है, यह नयपक्ष से पार है। ऐसी दशा चतुर्थ गुणस्थान में होती है और मोक्ष का मार्ग खुल जाता है। आठ वर्ष का बालक या बालिका हो, सिंह, हाथी जैसे पशु हों, अरे ! नरक का नारकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो – ये सभी अपने उपयोग को अन्तर्मुख करके ऐसी अपूर्व अनुभवदशा प्रकट कर सकते हैं। अन्तर में चैतन्य भगवान बैठा है न ! वह जाग जाए तो सम्यग्दर्शन होने में क्या देर है ? उसमें तो ऐसी ताकत है कि अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्रकट कर ले। बापू ! तू जाग और अपनी शक्ति को सम्हाल ! ऐसे उत्तम अवसर को मत चूक !

देखो यह भगवान का सन्देश ! देवों, मनुष्यों और तिर्यञ्चों की सभा में तीर्थंकर भगवान यह सन्देश सुनाते थे – 'भगवान ! तू हमारे जैसा आत्मा है, चैतन्यस्वरूप है, शुद्ध है, आनन्द से परिपूर्ण है; तू सभी बातों में परिपूर्ण है, किसी भी बात में अधूरा नहीं है, तू क्रोधादिभावरूप नहीं है, चैतन्यभावरूप है।' भगवान की वाणी में अपने आत्मा का स्वरूप सुनते ही बहुत से जीव उपयोग को अन्तर्मुख करके ध्यान-ध्याता-ध्येय के विकल्पों से पार निर्विकल्प चैतन्यतत्त्व का अनुभव करके अतीन्द्रिय आनन्द प्रकट कर लेते हैं। शुद्धोपयोग के बिना चैतन्य में परिणाम एकाकार नहीं होते, एकाग्रता बिना निर्विकल्पता नहीं होती और निर्विकल्पता के बिना आनन्द की अनुभूति नहीं होती। ऐसी दशा धन्य है। कुन्दकुन्दाचार्य ने चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि को भी धन्य कहा है। मोक्षपाहुड़ गाथा ८९ में वे लिखते हैं – "सिद्धि कर ऐसे सम्यक्त्व को जिन्होंने स्वप्न में भी मलिन नहीं किया, वे श्रावक धन्य हैं, शूरवीर हैं, पण्डित हैं।" जब चौथे गुणस्थानवाले सम्यग्दृष्टि को भी धन्य कहा है तो सातवें गुणस्थानवर्ती मुनियों की महिमा की क्या बात ? वह दशा तो धन्य-धन्य है। यह तो परमेष्ठी पद है। वे शुद्धोपयोग द्वारा बारम्बार ध्यान में एकाग्र होते हैं, मानो सिद्ध होकर बैठ गए हों।

समयसार की सातवीं गाथा में भी कहा है कि धर्मी को अनुभूति में ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद नहीं होते। यद्यपि व्यवहार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में अनन्त गुण-पर्यायों के भेद हैं; तथापि अभेद आत्मा की अनुभूति उन सबको पी जाती है। अनुभूति में वे सभी गुण-पर्याय समा जाते हैं अर्थात् अभेद में भेद दिखाई नहीं देते। अभेद एक तत्त्व की अनुभूति में भेद का कोई विकल्प नहीं रहता। ऐसी अनुभूतिपूर्वक सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन प्रकट होता है। फिर निर्विकल्प स्वानुभूति दशा कायम नहीं रहती, कभी-कभी होती है। मुनि को तो बारम्बार घड़ी-घड़ी निर्विकल्प स्वानुभूति होती रहती है। फिर वे श्रेणी चढ़कर केवलज्ञान प्रकट कर लेते हैं। मुनिराज का ऐसा स्वरूप विचारते समय ऐसा लगता है, मानो वे साक्षात् हमारे सामने आकर खड़े हो गए हों।

विकल्प, ज्ञानी का कार्य नहीं है, ज्ञानी का कार्य ज्ञानभाव ही है। ध्यान के समय आत्मा स्वयं ही कर्त्ता-कर्म-क्रियारूप परिणमित होता है; परन्तु वहाँ कर्त्ता-कर्म-क्रिया का भेद नहीं रहता; सब कुछ एकाकार चैतन्यरूप अनुभव में आता है। बाद में विकल्प होते हैं, राग होता हैं, परन्तु धर्मी उसे अपने ज्ञान का कार्य नहीं मानते। उसे राग के साथ कर्त्ता-कर्मपना नहीं है। मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा कर्त्ता और ज्ञानभाव मेरा कर्म – ऐसा भेद भी अनुभूति में नहीं रहता। उसमें तो चैतन्य में निश्चल शुद्धोपयोग ही वर्तता है, एकाकार ज्ञायकभाव ही अनुभव में आता है; रत्नत्रय की एकता में आत्मा शोभित होता है, प्रकाशित होता है।

यहाँ मोक्षमार्गी मुनिराज के स्वरूपाचरण की बात चल रही है। चौथे गुणस्थान में निर्विकल्प अनुभव द्वारा अनन्तानुबन्धी कषाय का अभाव होने पर स्वरूपाचरण का प्रारम्भ होता है; उसके बाद आत्मा चैतन्यस्वरूप में एकाग्र होने पर जैसे-जैसे विज्ञानघन होता जाता है, वैसे-वैसे कषायें टूटती जाती है और स्वरूपाचरणरूप शुद्ध परिणति बढ़ती जाती है। रागभाव स्वरूपाचरण नहीं है, वह तो परभावरूप आचरण है। ध्यान-ध्याता-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ध्येय के भेद रहित अभेद अनुभूति मुनियों का स्वरूपाचरण है, उसमें उपयोग चैतन्य के स्वाद में ही निश्चल एकाग्र रहता है। ऐसा शुद्धोपयोग ही मोक्ष का उपाय है।

प्रश्न – यह तो मुनियों की बात है, इससे हमें क्या लाभ ?

उत्तर – भाई ! यह बात मुनियों को नहीं समझा रहे हैं। यह बात तो आत्मा का अनुभव करने के लिए तुझे समझा रहे हैं। इसे समझकर अनुभव करने के बाद भी शुद्धोपयोगरूप मुनिदशा प्रकट करने पर ही मोक्ष होता है। मुनिदशा हुए बिना मोक्ष नहीं होता।

जड़ की क्रिया तो बहुत दूर है, आत्मा से बाहर है; पाप और पुण्य के भाव भी आत्मा के चैतन्यस्वभाव से बाहर हैं, उनसे चैतन्यलाभ नहीं होता। सम्पूर्ण चैतन्य स्वभाव का लक्ष्य करके उसमें एकाग्र होने पर शुद्धोपयोग सहित आत्मलाभ अर्थात् आत्मानुभव रूपी चिन्तामणिरत्न प्रकट होता है।

पण्डित बनारसीदासजी ने भी लिखा है –

अनुभव चिन्तामणि रतन अनुभव है रस कूप।
अनुभव मारग मोक्ष को अनुभव मोक्ष स्वरूप ।।

शुद्धोपयोग से चैतन्य का अनुभव करनेवाले ज्ञानी अपने को रागरूपी नहीं मानते। यद्यपि उन्हें निरन्तर शुद्धोपयोग नहीं रहता, उन्हें पूजा आदि के शुभभाव या व्यापार आदि के अशुभभाव भी होते हैं; तथापि उन्हें स्वानुभव के समय विकल्प से भिन्न चैतन्यतत्त्व का ज्ञान और शुद्धतारूप परिणमन प्रारम्भ हुआ था, वह तो निरन्तर चालू रहता है; उन्हें चैतन्य और विकल्पों में एकत्वबुद्धि नहीं होती। अज्ञानी ने आजतक चैतन्य का स्वाद नहीं चखा, वह राग का स्वामी होकर उसी का स्वाद लेता है। धर्मात्मा जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप भाव को ही आत्मा का कार्य मानते हैं। उनके कर्त्ता-कर्म-क्रिया तीनों चैतन्यभावरूप हैं, रागरूप नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ये तीनों अभिन्न और अखिन्न हैं अर्थात् स्वानुभूति में आत्मा भेद और खेद रहित परिणमित होता है। राग-द्वेष रहित ऐसा अनुभव ही मोक्ष का कारण है।

अज्ञानी जीव आत्मा के अनुभव बिना मात्र पुण्य-पापभाव करके स्वर्ग-नरक आदि चारों गतियों में नया-नया शरीर धारण करके दुःखी हो रहा है। बापू ! यह शरीर और कर्म तेरे साथी नहीं हैं, तो बाहर के साथियों की क्या बात करना ? अरे ! राग भी तेरा साथी होकर तुझे सुख दे दे – ऐसा नहीं है, वह तो तुझे दुःख देनेवाला साथी है। तेरा चैतन्य वैभव ही तेरा अभेद साथी हैं, जो कभी साथ नहीं छोड़ता और सुखदायक है। चैतन्यस्वरूप आत्मा अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता से शोभित होता है। व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अभेदरूप नहीं हैं, वे रागरूप हैं; इसलिए उनसे आत्मा की शोभा नहीं है। शुद्धभावरूप निश्चय रत्नत्रय ही आत्मा में अभेदरूप है और रागरहित है; इसलिए उससे आत्मा शोभित होता है। इस जीव ने आजतक अभेद स्वानुभूतिरूप स्वरूपाचरण की क्रिया नहीं की अर्थात् स्वयं कर्त्ता होकर शुद्ध परिणतिरूप नहीं हुआ मुनिराज ऐसी क्रियारूप परिणमित होते हुए मोक्ष को साध रहे हैं।

दया-दान आदि का राग हो या अर्हन्त आदि की भक्ति का राग हो अथवा गुण-गुणी के भेद के विचार के साथ होनेवाला राग हो – इन तीनों में से एक भी राग शुद्धोपयोगरूप परिणति में नहीं है तथा अनुभूति का कारण नहीं हैं, राग तो कर्म का ही कारण है। प्रभो ! यह तो वीतराग मार्ग है। इसमें राग के कण को भी स्थान नहीं हैं। कदाचित् आँख में कोई कण बर्दाश्त हो जाए; परन्तु वीतरागमार्ग में राग का कण भी बर्दाश्त नहीं होता।

मोक्ष का कारण मोक्ष की ही जाति का होता है, उससे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विरुद्ध जाति का नहीं, अर्थात् रागादि बन्धभाव मोक्ष का कारण कभी नहीं हो सकता। देखो ! यह कितना स्पष्ट वीतरागी-भेदज्ञान है। यही वीतराग-विज्ञान तीन भुवन में सार है। इसी के द्वारा धर्मी जीव अर्हन्तादि महान पद प्राप्त करते हैं।

जब यह जीव भेदज्ञान करके अपने उपयोग को शुद्ध स्वरूप में एकाग्र करता है, तब उसे चैतन्य की शुद्ध क्रिया होती है। उसमें रागक्रिया नहीं है और कर्त्ता-कर्म-क्रिया भिन्न-भिन्न रूप नहीं हैं, अभेद रूप हैं। "मैं कर्त्ता चेतनभाव मेरा कर्म और चेतनारूप होना मेरी क्रिया" – ऐसे तीन भेदों पर लक्ष्य अनुभूति में नहीं रहता, इन तीनों का अभेदरूप अनुभव होता है। ऐसी अनुभूति चौथे गुणस्थान में भी होती है। राग के साथ एकत्वबुद्धि तोड़कर चैतन्य में एकत्वबुद्धि होने पर जितने अंशों में वीतरागभाव होता है, उतना शुद्ध स्वरूपाचरण है, उतना धर्म है और उतना मोक्षमार्ग है।

सम्यग्दर्शन होने पर तो जीवन ही ऐसा पलट जाता है, मानो आत्मा ही नया हो गया हो। यदि ऐसा अपूर्व परिवर्तन न हो तो सम्यग्दर्शन का फल क्या हुआ ? आत्मा में क्या अन्तर पड़ा ? अरे ! सम्यग्दर्शन होने पर तो आत्मा में अनन्त अपूर्व भाव खिलते हैं, लोगों को इसकी गंभीरता ख्याल में नहीं आती। चैतन्य के अनुभव के सामने शुभराग और पुण्य तो अत्यन्त तुच्छ हैं, बाह्य हैं, उनमें कुछ नया नहीं हैं, कुछ अपूर्व नहीं हैं, ये तो संसारी जीव अनादिकाल से कर ही रहे हैं; परन्तु इनसे कोई कल्याण नहीं हुआ; इसलिए कल्याण करने के लिए यह अपूर्व बात समझना चाहिए।

स्वरूपाचरण का वर्णन करते हुए यहाँ कहते हैं, 'चिद्भावकर्म, चिदेश कर्त्ता'। चिदेश अर्थात् चैतन्य ईश्वर। आत्मा स्वयं अपने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चैतन्य वैभव का स्वामी होने से चिदेश्वर है। वह चिदेश स्वयं अपने सम्यक्त्वादि चैतन्यभावों का अभेदरूप से कर्त्ता है। राग चैतन्य से भिन्न भाव है, इसलिए वह चैतन्यभाव का कर्त्ता नहीं है और चिदेश भगवान राग का कर्त्ता नहीं है। चिदेश भगवान आत्मा स्वयं अपने ज्ञानभावों का स्वामी और कर्त्ता है।

हे जीव ! तू राग या धनादि जड़पदार्थों के स्वामी के रूप में शोभा नही देता, यह तो तेरे लिए कलंक है। सम्यक्त्व आदि ज्ञानभावों का स्वामी होने में ही तेरी शोभा है। भाई ! चैतन्य परमेश्वर को जड़ का स्वामित्व नहीं होता। आत्मा स्वयं चैतन्य परमेश्वर है। अनन्त जीव अपने चैतन्य परमेश्वर में से सर्वज्ञता प्रकट करके वीतराग परमेश्वर के रूप में शोभित हो रहे हैं और कह रहे हैं कि तू भी चैतन्य परमेश्वर है। परमेश्वर जगत के कर्त्ता या स्वामी नहीं होते, वे अपने चैतन्यभाव के कर्त्ता और स्वामी होते हैं।

भाई ! यह बात समझकर अपना अपूर्व कार्य करने का यह मंगल अवसर आया है; इसलिए तो आत्मार्थी होकर सच्ची विधि समझ ले। सच्ची विधि समझेगा, तो सच्चा आचरण होगा। यदि विधि ही उल्टी समझेगा अर्थात् रागरूप आचरण को स्वरूपाचरण समझेगा तो तुझे कभी मोक्षमार्ग का सच्चा आचरण नहीं होगा और निरन्तर मोहरूप, रागरूप और अज्ञानरूप आचरण होगा जो कि संसार का ही कारण हैं। रागरहित ज्ञानमय स्वरूपाचरण ही मुक्ति का कारण है।

भगवान कहते हैं कि भाई ! अज्ञान के कारण तूने अपने चैतन्य स्वरूप में आचरण छोड़कर परभाव का आचरण किया और तू दुःखी हुआ; अब तो राग से भिन्न अपने चैतन्यस्वरूप को जानकर उसमें आचरण कर – इसमें तुझे अपूर्व सुख होगा। हम

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तुझे तेरे हित की बात बताते हैं, इसे लक्ष्य में ले, इसी में अपूर्व शान्ति है और इसी में तेरे आत्मा की शोभा है। अरे चैतन्य प्रभु आत्मा क्या दुःख में शोभेगा ? नहीं, वह तो अपने चैतन्यसुख में ही शोभेगा। उसकी शोभा अद्भुत है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही एकतारूप मोक्षमार्ग में तीनों अभेदरूप शोभित होते हैं। जिसप्रकार हलवे में घी, शक्कर और आटा तीनों अभेदरूप होते हैं; उसीप्रकार मोक्षरूपी हलवे में सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र अभेदरूप से रहते हैं। जड़ की क्रिया और राग से मोक्षमार्ग का हलवा नहीं बनता। तीनों अलग-अलग रहें तो हलवा नहीं बनता। स्वानुभूति में भी तीनों एकरस रहें, तभी आनन्द का स्वाद आता है। गुणभेद के लक्ष्य में अटकने पर चैतन्य हलवे का स्वाद नहीं आता। अभेदरूप स्वानुभूति में ही मोक्षसुखरूप हलवे का स्वाद आता है। जो रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग में शुभराग को मिलाना चाहता है, उसे मोक्षरूपी हलवे की विधि नहीं आती; वह मोक्ष का उपाय नहीं जानता। भाई ! मोक्ष का मार्ग शुद्धोपयोगरूप है रागरूप नहीं। राग तो बंधमार्ग है। मोक्षमार्ग रागरहित है, वह तेरे चैतन्यस्वभाव के आश्रय से है। राग तो चैतन्य से बाहर है। चैतन्यस्वभाव और राग, दोनों के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं और प्रज्ञाछैनी द्वारा दोनों की भिन्नता का अनुभव होता है।

प्रज्ञाछैनी रूप ज्ञान जब राग से भिन्न होकर चैतन्यस्वभाव में एकाग्र होता है और अपूर्व आनन्द भोगता है; तब कर्त्ता-कर्म के समान भोक्ता-भोग्य का भेद भी नहीं होता। तब राग का भोक्तापना तो रहता ही नहीं, परन्तु 'मै आनन्द का भोक्ता हूँ' – ऐसा भेद-विकल्प भी आनन्द के वेदन में नहीं होता। अपने अन्दर ही अन्दर अर्थात् वस्तु में कर्त्ता-कर्मपना, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयपना, ध्याता-ध्यान-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ध्येयपना, भोक्ता-भोग्यपना आदि सब हैं अवश्य, परन्तु ये सब अभेदरूप हैं। स्वानुभूति में कोई भेद नहीं देखते। मुनिराज ऐसी अनुभूति में लीन होकर अतिशीघ्र केवलज्ञान प्रकट करके परमात्मा हो जाते हैं।

इसप्रकार आठवें और नवमें छन्द में मुनिराज के शुद्धोपयोगरूप स्वरूपाचरण का वर्णन किया। अब दसवें छन्द में उसका विशेष वर्णन करेंगे।

मुनिराज के स्वरूपाचरण का विशेष वर्णन

परमाण-नय-निक्षेप को न उद्योत अनुभव में दिखे,
दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा नहिं आन भाव जु मो विषें।
मैं साध्य-साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं,
चित्पिण्ड चण्ड अखंड सुगुणकरंड च्युत पुनि कलनितैं।। १०।।

शुद्धोपयोग द्वारा आत्मस्वरूप में लीन होनेवाले मुनिराज के अन्तर में क्या चल रहा है ? यहाँ उसका वर्णन चल रहा है। मुनिराज के ध्यान में प्रमाण-नय-निक्षेप सम्बन्धी भेद प्रकट नहीं होते। मैं ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यमय हूँ, मुझमें कोई परभाव नहीं है। मैं ही साध्य और मैं ही साधक हूँ। कर्म और कर्मफल से अबाधित हूँ अर्थात् मैं राग-द्वेषरूप कर्मचतना और हर्ष-शोकरूप कर्मफल चेतना से भिन्न ज्ञानचेतनारूप हूँ। मैं अबाधक हूँ, मैं शरीर और मोह से रहित अनन्त गुणों का भण्डार, चमकता हुआ चैतन्य पिण्ड हूँ। मुनियों को ऐसी आत्मानुभूति होती है। यद्यपि अनुभूति में ऐसे विचाररूप विकल्प नहीं होते; तथापि अनुभूति में ऐसे भावों का वेदन होता है। निर्विकल्प अनुभूति शून्यरूप नहीं है, उसमें अनन्त चैतन्यमय गुणों के रस का स्वाद भरा है। वह तो विकल्पों से शून्य है। अनन्त स्वभावरस से भरी, महा-आनन्दमय ऐसी अनुभूति द्वारा मुनिराज मोक्ष को साधते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैसे पर्वत पर बिजली गिरते ही उसके दो टुकड़े हो जाते हैं, फिर वे जुड़ते नहीं हैं; उसीप्रकार अज्ञान के ऊपर भेदज्ञान की बिजली गिरते ही राग और चैतन्य की एकताबुद्धि टूटते ही वे भिन्न-भिन्न भासित होने लगते हैं। धर्मी को राग से भिन्न चैतन्य का अनुभव हुआ, अब पुनः कभी राग और चैतन्य में एकत्वबुद्धि नहीं होगी। राग से भिन्न होकर चैतन्यस्वरूप में ही लीनता करते-करते वे अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त करेंगे। जो जीव राग में धर्म मानता है, उसमें एकत्वबुद्धि करके उसी में रमण करता है। उसकी प्रवृत्ति तो अनन्तानुबन्धी कषायों में है, उसे चैतन्य में प्रवृत्तिरूप धर्म नहीं होता। धर्मी को तो राग से निवृत्ति और चैतन्य में प्रवृत्तिरूप स्वरूपाचरण होता है।

भाई ! सत्समागम से धर्म का स्वरूप समझकर आत्मा का अनुभव करने पर सम्यक्त्वादि मोक्षमार्ग प्रकट होता है और उसी में आत्मा शोभित होता है। समयसार गाथा ३ में आचार्य कुन्दकुन्ददेव कहते हैं कि एकत्व को प्राप्त शुद्धात्मा ही सर्वत्र सुन्दर है। पर से भिन्न, राग से भिन्न अपने चैतन्यस्वभाव में एकत्व करके धर्मीजीव मोक्षमार्ग के मंडप में अपनी आत्मा का श्रृंगार करते हैं आत्मा वीतरागी सुन्दरता से शोभित हो उठता है।

भाई ! तेरा आत्मा दुनिया से भिन्न है। दुनिया के काम का बोझा तेरे ऊपर नहीं है, बाहर के बोझे से तेरी शोभा नहीं है। जिसप्रकार तीर्थंकर भगवान की शोभा समवशरणादि बाह्य वस्तुओं से नहीं है, उनकी शोभा अनन्तज्ञान आदि चतुष्टय से है; उसीप्रकार तेरी शोभा बाह्य पुण्य के वैभव से या राग से नहीं है; तेरी शोभा तो सम्यक्त्वादि वीतरागी शुद्धभावों से है। मुनियों का जीवन रत्नत्रय से अद्भुत सौन्दर्यमय हो जाता है।

यह जीव उपयोगस्वरूप है; परन्तु इसने अनादि से उपयोग को रागादि में मिलाकर अशुद्धाचरण किया है, उपयोग को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुद्धात्मा में जोड़कर शुद्धाचरण कभी नहीं किया। उपयोग और राग का भेदज्ञान होने पर ही स्वरूप में प्रवृत्तिरूप शुद्धाचरण प्रारम्भ होता है और फिर मुनिदशा होने पर उपयोग अतिशयरूप से स्वरूप में ही आचरण करता है। यहाँ स्वरूपाचरण की महिमा का अद्भुत वर्णन किया जा रहा है।

समयसार की आत्मख्याति टीका के नवमें कलश में आचार्यदेव ने सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के समय आत्मानुभूति का वर्णन करते हुए कहा है कि अनुभूति के समय प्रमाण-नय-निक्षेप के भेद अस्त हो जाते हैं और द्वैत ही प्रतिभासित नहीं होता। यहाँ भी वही बात कही है कि अनुभव में प्रमाण-नय-निक्षेप का उद्योत नहीं दिखता। इसप्रकार पण्डित दौलतरामजी ने इस ग्रन्थ की रचना पूर्वाचार्यों के अनुसार ही की है।

इस छन्द में कहा है 'दृग-ज्ञान-सुख बलमय सदा' अर्थात् मुनिराज ध्यान में अपने को दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्यरूप अनुभव करते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द भी नियमसार गाथा ६६–६७ में यही बात कहते हैं –

कैवल्य दर्शन-ज्ञान-सुख कैवल्य शक्ति स्वभाव जो।
मैं हूँ वहीं यह चिन्तवन होता निरन्तर ज्ञानि को।। ६६।।
निजभाव को छोड़े नहीं किञ्चित् ग्रहे परभाव नहिं।
देखे व जाने मैं वही, ज्ञानी करे चिन्तन यही।। ६७।।

धर्मी के ध्यान और चिन्तन का विषय अनन्त चतुष्टयरूप आत्मा ही है। वह कभी अपने चतुष्टयरूप निजभावों को नहीं छोड़ता और रागादि परभावों को कभी ग्रहण नहीं करता। धर्मात्मा अपने को सबको जाननेवाले परिपूर्ण ज्ञानस्वभावी परमतत्त्वरूप चिन्तन करते हैं, ध्यान करते हैं, अनुभव करते हैं,। भगवान ने भव्यजीवों को इसी परमतत्त्व की भावना अर्थात् ध्यान करने की शिक्षा दी है। तत्त्वज्ञानी जीव ऐसे आत्मा को ही ध्याते हैं। जिसने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पहले इस तत्त्व को जाना है, वही उसका ध्यान करेगा न ? जाने बिना ध्यान किसका होगा ?

भगवान आत्मा अनन्त गुणों का करण्ड अर्थात् भण्डार है। वह अपने चैतन्य स्वभाव से भरा हुआ है और रागादि विभावों से शून्य अर्थात् खाली है, विकार के बोझे से रहित हल्का है। शुद्धोपयोग द्वारा आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान होते ही आत्मा कर्मों के भार से हल्का हो जाता है, मिथ्यात्वादि विभावों का बोझा उतर जाता है। आत्मा के अनुभव में तो प्रमाण और नय के विकल्पों का बोझा भी नहीं रहता, क्योंकि वे विकल्प अनुभव में साधक नहीं हैं। चैतन्य के अनुभव में बाह्य दया, दान आदि के स्थूल विकल्प तो सहायक हैं ही नहीं, गुण-गुणी सम्बन्धी विचारों में जो सूक्ष्मराग होता है, वह भी सहायक नहीं है। 'मैं ज्ञायक हूँ शुद्ध नय से शुद्ध हूँ, पर्याय को अन्तर में झुकाकर आत्मा का परन्तु उसने प्रमाण अर्थात् आत्मा का सम्यग्ज्ञान कभी नहीं किया।

कुछ लोग कहते हैं कि प्रमाणज्ञान करके भी यह जीव संसार में रखड़ता रहा; परन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है। इसने प्रमाणज्ञान कभी किया ही नहीं, यह किसी न किसी भूल में अटक गया है। यदि प्रमाणज्ञान करे तो साथ में सम्यग्ज्ञान अवश्य होता है और भव का अन्त आ जाता है। जिसप्रकार सम्यग्दर्शन निर्विकल्प स्वानुभूति में प्रकट होता है; उसीप्रकार प्रमाण (सम्यग्ज्ञान) भी निर्विकल्प स्वानुभूति में प्रकट होता है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ प्रकट होता है, शुद्धनय भी इसीसमय प्रकट होता है। ऐसे शुद्धनय से स्वरूप में एकाकार होने पर समस्त विकारों से भिन्न चैतन्यतत्त्व का अनुभव होता है, उसमें मोक्षसुख का स्वाद आता है। ऐसा अनुभव हुए बिना साधकदशा या मोक्षमार्ग प्रारम्भ नहीं होता। मोक्ष की साधना करनेवाले जीव ऐसी अनुभूति प्रकट करते हैं; क्योंकि मोक्ष की साधना की अन्य कोई विधि नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप आत्मवस्तु का निर्णय करते समय नय-प्रमाण के विचार होते हैं और उनसे एकान्तपक्षरूप विपरीत मान्यता दूर हो जाती है; परन्तु प्रमाण आदि के विकल्पों में ही अटके रहने से आत्मा के स्वरूप का अनुभव नहीं होता। जो विकल्पों में ही रुक जाता है, उसे अनुभव का आनन्द नहीं आता। अनुभव के समय तो उपयोग शुद्धात्मा में ही एकाग्र होकर आनन्द का साक्षात् वेदन करता है। वस्तु स्वरूप का निर्णय करने के लिये विचार के समय साथ में प्रमाण-नय-निक्षेप के विकल्प भी होते हैं, फिर निर्विकल्पदशा में साक्षात् शुद्धनय से आत्मा का वेदन होता है, वहाँ विकल्प नहीं होते।

विचारदशा में जो प्रमाण या नय के विकल्प होते हैं। वे सच्चे प्रमाण या शुद्धनय नहीं थे; इसलिए उन्हें हेय या बाधक कहा है। अनुभव में जो शुद्धोपयोगरूप शुद्धनय है, वह भूतार्थ है। समयसार में भी शुद्धनय को भूतार्थ कहा है, वह बाधक या हेय नहीं है – ऐसा विकल्प भी शुद्धात्मा को नहीं पकड़ सकता, विकल्प से भिन्न ज्ञान ही शुद्धात्मा को पकड़ सकता है। अनुभव में शुद्धनय भी है और निर्विकल्प प्रमाण भी है; परन्तु उसमें विकल्प नहीं है, भेद नहीं है। मैं सिद्धसमान हूँ, द्रव्यदृष्टि से शुद्ध हूँ – इत्यादि विकल्प होते हैं; परन्तु वे ज्ञान का स्वरूप नहीं हैं। आत्मा का स्वरूप तो सिद्धसमान, शुद्ध ही है; परन्तु विकल्प स्वरूप में नहीं है; इसलिए अनुभव के समय वस्तु का यथार्थज्ञान रह जाता है और विकल्प छूट जाता है।

अहो ! आत्मवस्तु की कीमत अचिन्त्य है, विकल्पों से उसका मूल्यांकन नहीं हो सकता। स्वभावरूपी समुद्र के गहरे तल तक विकल्प नहीं जा सकते, वहाँ तो विकल्परहित अतीन्द्रिय ज्ञान ही पहुँच सकता है। अनन्त गुणों के भण्डारस्वरूप आत्मा जैसा है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वैसा लक्ष्य में ले, तो उपयोग उसमें एकाग्र होता ही है और निर्विकल्प अनुभूति होती ही है। अनुभव में अनन्त गुणों का विशाल खजाना हाथ में आ जाता है। भाई ! चैतन्य का चमत्कार, गुणों का गोदाम, शक्तियों का संग्रहालय तुझ में ही है। तुझ में अखूट भण्डार है, तू उसे खोल और भोग। चूरमा में घास के समान स्वरूप में विकल्पों को मत मिला।

धर्मी अपने स्वरूप का अनुभव अस्ति-नास्ति रूप से करते हैं। मैं अनन्त गुणों का भण्डार हूँ – ऐसा अनुभव अस्तिरूप है और 'कल' अर्थात् राग-द्वेषादि कषायभाव मुझमें नहीं हैं – ऐसा अनुभव नास्तिरूप है। मैं ऐसा हूँ और ऐसा नहीं – ऐसा विकल्प अनुभव में नहीं होता, वहाँ तो शुद्धोपयोग रहता है। धर्मात्मा तो कर्म और कर्मफल से रहित चैतन्यरत्नाकर भगवान आत्मा का अनुभव करते हैं। द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म उनके अनुभव से बाहर रहते हैं। वे अपने आत्मा में अशुद्ध भावों को नहीं देखते; उन्हें तो खेद और भेद रहित एक चैतन्यतत्त्व ही अनुभव में दिखता है। 'भाति न द्वैतमेव' अर्थात् द्वैत ही प्रतिभासित नहीं होता।

देखो यह धर्मात्माजीव की अनुभवदशा ! पहले शरीरादि से भिन्न आत्मस्वरूप का विचार किया था, अब उससे भी आगे बढ़कर साक्षात् अनुभव प्रकट किया। उसके बाद मुनिराज की ध्यान दशा में शुद्धोपयोगरूप स्वरूपाचरण प्रकट होता है, जिसका वर्णन इस छन्द में किया है। इसके फल में केवलज्ञान होने का वर्णन आगामी छन्द में करेंगे।

चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा आनन्द का समुद्र है, उसमें क्लेश की गंध भी नहीं है। छह खण्ड के संयोग में रहनेवाले धर्मी भी असंयोगी आत्मा के ध्यान में ऐसे आनन्द का अनुभव करते हैं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कि ध्यान से च्युत होने पर भी उनके श्रद्धा-ज्ञान में संयोगों से भिन्न आत्मा निरन्तर वर्तता रहता है।

भगवान आत्मा के चैतन्य क्षेत्र में अनन्त गुणों की बस्ती है, वह कोई उजाड़ या वीरान नहीं है। 'जिसमें अनन्तज्ञान-दर्शन-आनन्द-बल आदि अनन्त गुणों का वास है – ऐसा आत्मा मैं स्वयं हूँ'– धर्मी निरन्तर ऐसा अनुभव करते रहते हैं। अनुभव के समय उन्हें शुद्धोपयोग होता है, जिसमें परपदार्थों का लक्ष्य तो होता ही नहीं तथा मैं ज्ञान हूँ सिद्ध समान हूँ''– ऐसे विकल्प भी नहीं होते। ज्ञान ने जिस शुद्धात्मा का निर्णय किया वही साक्षात् अनुभव में आता है और वही श्रद्धा में आता है। फिर स्वरूप में विशेष स्थिरता होने पर जीव मुनि होता है तथा अखण्ड शुद्धोपयोग द्वारा स्वरूप में लीन होने पर केवलज्ञान प्राप्त करके सर्वज्ञ बन जाता है।

जिसके विचारों में भी आत्मा का सच्चा स्वरूप नहीं आता और जो राग से लाभ माननेरूप विपरीत विचार करता है, वह राग को छोड़कर चैतन्य का अनुभव कैसे करेगा ? इसलिए सर्वप्रथम आत्मा का जिज्ञासु होकर उसके सच्चे स्वरूप का विचार और निर्णय करना चाहिए। सच्चा निर्णय करते ही अन्दर से कोई अपूर्व प्रकार का विश्वास आ जाता है कि बस यही मेरा सच्चा स्वरूप है, इसके सन्मुख होने पर मुझे अपूर्व सम्यक्त्वादि भाव प्रकट होंगे। इसी विश्वास के बल से स्वभावसन्मुखता का अपूर्व प्रयत्न उत्पन्न होता है।

यह आत्मा स्वयं साध्य है और स्वयं साधक है। आत्मा से भिन्न कोई साध्य या साधन नहीं है। भगवती प्रज्ञारूप मेरी शुद्ध परिणति ही साधन है, जो मुझसे अभिन्न है। स्वानुभूति में भिन्न साध्य-साधन नहीं अर्थात् आत्मा साध्य और शुद्धोपयोग साधन –

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसा भेद नहीं रहता। आत्मा स्वयं साधन होकर पूर्णता को साधता है, फिर तू बाहर में अन्य साधन क्यों खोजता है ? व्यर्थ में आकुलता क्यों करता है ? अपने में ही ठहर जा न !

धर्मीजीव राग या शरीरादि को सम्यक्त्व का साधन पहले से ही नहीं मानते थे; परन्तु मेरी ज्ञानदशा साधन है और आत्मा साध्य है – ऐसा यथार्थ साधक-साध्य का भेद भी उन्हें ध्यान के समय उत्पन्न नहीं होता । अज्ञानी जीवों को सच्चे साध्य-साधक की खबर नहीं है, वे रागादि बाधकभावों को साधक मानते हैं, इसलिए वे राग का विकल्प छोड़कर रागरहित आत्मा को नहीं साध सकते। वे जिसे साधन मानते हैं, उसे क्यों छोड़ेंगे ?

ज्ञानी अपने आत्मा को ही साध्य-साधक-साधन मानते हैं। वे परद्रव्यों को अबाधक मानते हैं। "परद्रव्य मुझे बाधा नहीं पहुँचा सकते, कर्म का बन्धन या राग-द्वेषादि बाधकभाव अर्थात् कर्म और उनका फल मेरे शुद्ध चैतन्यस्वरूप में नहीं हैं। चैतन्यचमत्कार में मात्र आनन्दमयी ज्ञानचेतना है, उसमें कर्मचेतना और कर्मफल चेतना नहीं है। मेरा चैतन्यभण्डार अनन्त उत्तमगुणों से भरा है"– इसप्रकार स्वभाव सन्मुखता के जोर में श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र स्वभाव में ही एकाग्र हो जाते हैं, रागादि परभाव स्वभाव से भिन्न हो जाते हैं और आनन्द के वेदन में ऐसी लीनता हो जाती है कि द्वैत ही भासित नहीं होता, विकल्प लुप्त हो जाते हैं। ऐसी अनुभूति में उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दर्शन अभेदरूप से आत्मा ही है। (यह बात आचार्य अमृतचन्द्र ने समयसार की टीका के छठवें कलश में बहुत अच्छी तरह समझाई है)

प्रमाण-नय-निक्षेप, द्रव्य-गुण-पर्याय, नवतत्त्व आदि के विचारों को आत्मा की अनुभूति के लिए व्यवहार से साधन कहा गया था; परन्तु जो जीव अपने उपयोग को आत्मा के सन्मुख नहीं करते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और भेद के विचारों में ही अटके रहते हैं; उनके लिए तो वे बाधक ही हो गए, क्योंकि जबतक वे भेद के विचारों में ढके रहेंगे; तब तक आत्मा का निर्विकल्प अनुभव नहीं होता। विकल्पों से पार भूतार्थ स्वभाव सम्यग्दर्शन में किसप्रकार अनुभव में आता है – इसका अद्भुत वर्णन समयसार में अनेक स्थानों पर किया गया है। आचार्य भगवन्तों ने स्वानुभव की वीणा बजाकर ज्ञायक स्वभाव की अपूर्व महिमा गायी है। भूतार्थ स्वभाव का आश्रय, शुद्ध नय, सम्यग्दर्शन, स्वरूपाचरण,निर्विकल्प अनुभूति, भेदज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद, परमात्मा का साक्षात्कार आदि सब कुछ चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग में एक साथ शुरु हो जाता है।

देखो ! यह चतुर्थगुणस्थान की अपूर्व महिमा ! छठवाँ-सातवाँ आदि गुणस्थान तो इससे भी अधिक ऊँचे हैं। आत्मानुभूति होने पर ही धर्म अर्थात् मोक्षमार्ग की शुरुआत होती है। रागदिभाव मोक्षमार्ग नहीं हैं; क्योंकि वे चैतन्यस्वभाव में ही नहीं हैं, अभूतार्थ हैं, विभाव हैं, अशुद्धता हैं, बाह्याचरण हैं। भगवान आत्मा विभावों का भण्डार नहीं है, वह तो शुद्ध गुणों का भण्डार है 'सुगुण करण्ड' है, उसके अनुभव में दोष या अशुद्धता नहीं है। गुणों के भण्डार में दोष कैसे हो सकते हैं ? ऐसे आत्मा में जुड़ना ही शुद्धोपयोग है। शुद्धोपयोग में ही महान आनन्द है। मुनियों का जीवन ऐसे आनन्द से भरा हुआ है। वे आनन्दमय स्वरूपाचरण करते-करते अपने में केवलज्ञानादि निधान प्रकट करते हैं और उससमय परभावों की सम्पूर्ण प्रवृत्ति मिट जाती है। कहा भी है – **जिस होत प्रकटे आपनी निधि, मिटे पर की प्रवृत्ति सब।** – ऐसा स्वरूपाचरण चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन द्वारा प्रकट होता है और वह अनुक्रम से बढ़ते-बढ़ते तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान होने पर पूर्ण होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

छन्द क्रमांक ८-९-१० में मुनिवरों को होनेवाले शुद्धोपयोगरूप स्वरूपाचरण का वर्णन विस्तार से किया है। उस स्वरूपाचरण की पराकाष्ठा होने पर केवलज्ञान प्रकट होता है। अहो ! उसकी महिमा के बारे में क्या कहें ? सम्यग्दर्शन की महिमा अपार है तो केवलज्ञान की महिमा की तो क्या बात कहना ? यहाँ ग्यारहवें छन्द में केवलज्ञान प्रकट होने की विधि बतलाते हैं।

शुक्लध्यान का फल

यों चिन्त्य निज में थिर भये तिन अकथ जो आनन्द लह्यो,
सो इन्द्र-नाग-नरेन्द्र वा अहमिन्द्र के नाहीं कह्यो।
तब ही शुकल ध्यानाग्नि कर चउ घाति विधि कानन दह्यो,
सब लख्यो केवलज्ञान करि भविलोक को शिवमग कह्यो।। ११।।

इसप्रकार जो शुद्धोपयोग द्वारा अपने स्वरूप का चिन्तवन कर अर्थात् ध्याकर उसमें स्थिर होते हैं, वे मुनिराज अकथ्य अर्थात् वचनातीत आनन्द प्राप्त करते हैं। वैसा आनन्द इन्द्रों को, नागेन्द्रों अर्थात् भवनवासी देवों के इन्द्रों को, नरेन्द्र अर्थात् चक्रवर्तियों को तथा सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्रों को भी प्राप्त नहीं होता। यद्यपि सम्यग्दृष्टियों ने वैसे आनन्द का नमूना चखा है; तथापि मुनियों जैसा प्रचुर आनन्द उन्हें भी नहीं होता, इसलिए इन्द्र भी मुनिराज के चरणों में वन्दन करते हैं।

शुद्धोपयोग द्वारा स्वरूप के ध्यान में लीन मुनिराज जब शुद्धता की श्रेणी चढ़ते हैं, तब उन्हें शुक्लध्यान होता है। उस शुक्लध्यानरूपी अग्नि द्वारा वे चार घाति कर्मरूपी जंगल को एक अन्तर्मुहूर्त में ही जला देते हैं और केवलज्ञान प्रकट करके समस्त जगत को जान लेते हैं तथा दिव्यध्वनि द्वारा भव्यजीवों को मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं। दिव्यध्वनि का योग किसी अरहन्त को होता है और किसी को नहीं भी होता है। मुख्य बात तो केवलज्ञानादि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

की है, वह तो प्रत्येक मोक्षगामी जीव को होता ही है।

अहो ! जैन मुनियों को रागरहित ऐसा अद्भुत शुद्धोपयोगरूप स्वरूपाचरण होता है कि उस समय बाहर में ढोल नगाड़े बजते हों या शरीर को सिंह, बाघ आदि खाते हों तो भी उनका लक्ष्य वहाँ नहीं जाता, वे स्वरूप के आनन्द में ही मस्त रहते हैं और उससे भी अधिक उग्र ध्यान द्वारा क्षपक श्रेणी माँडकर केवलज्ञान प्रकट कर लेते हैं। आनन्द में अतिशय एकाग्रता द्वारा स्वरूप में स्थिर रहनेवाले मुनिराज को शुक्लध्यान प्रकट होता है। शुक्ल ध्यान में परिणाम की विशुद्धता अत्यधिक बढ़ती जाती है और वे चार घातिकर्मरूपी वन को अग्नि के समान शुक्लध्यान द्वारा जला देते हैं। देखो ! चार घातिकर्म को क्षय करने की ताकत शुभराग में नहीं है। राग से तो घातिया कर्मों का बन्ध होता है। जबतक संज्वलन कषाय का सूक्ष्मराग बाकी रहता है, तबतक घातिकर्म नष्ट नहीं होते। जब राग का सम्पूर्ण नाश होने पर पूर्ण वीतरागता होती है, तब अन्तर्मुहूर्त बाद चार घातिकर्मों का नाश होता है और केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय प्रकट होता है।

श्रीमद् राजचन्द्रजी ने लिखा है –''जीव एक अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य है, इसलिए उसकी ज्ञान सामर्थ्य पूर्ण है; जो पूर्णतः वीतरागी होता है, वही सर्वज्ञ होता है।'' ऐसी वीतरागता निजस्वरूप में स्थिरता द्वारा मुनियों को ही प्रकट होती है। पूर्ण वीतरागता के बिना किसी को केवलज्ञान नहीं होता और शुक्लध्यान के बिना किसी को वीतरागता नहीं होती और शुद्धोपयोग के बिना किसी को शुक्लध्यान नहीं होता। जो सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से चारित्रदशा प्रकट करके मुनि होते हैं और फिर ध्यान के द्वारा निजस्वरूप में निश्चल होते हैं, वे शुक्लध्यान के प्रहार से मोह का क्षय करके तथा ज्ञानावरणादि घातिकर्मों का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भी क्षय करके केवलज्ञान का द्वार खोल देते हैं। वे आत्मा स्वयं सर्वज्ञ परमात्मा बन जाते हैं और तीन लोक के समस्त पदार्थों को उनकी त्रिकालवर्ती पर्यायों सहित एकसाथ साक्षात् प्रत्यक्ष जानते हैं, अनन्त अलोक को भी अपने ज्ञान की अनन्तता में ज्ञेयरूप से डुबो देते हैं। केवलज्ञान का कोई अचिन्त्य सामर्थ्य है।

ऐसे केवलज्ञानी सर्वज्ञ परमात्मा आयुपर्यन्त मनुष्यदेह में अरिहन्त दशा में आकाश में विचरण करते हैं और यदि उसप्रकार के वचनयोग का उदय हो तो दिव्यध्वनि द्वारा भव्यजीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं। जब अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर इस भरतभूमि में विचरण करते थे, तब उनके साथ सात सौ अर्हन्त भगवान, सर्वज्ञपरमात्मा विचरते थे। इस समय विदेहक्षेत्र में ऐसे लाखों केवली भगवन्त अर्हन्त दशा में विचरण कर रहे हैं; उन्हें हमारा नमस्कार हो।

वह केवलज्ञान कैसे प्रकट होता है ? अकथ्य आनन्द से भरपूर शुक्लध्यान में स्थिरता से केवलज्ञान प्रकट होता है। वन, जंगल में आत्मध्यान में लीन मुनिराज को जो आनन्द है, वह आनन्द स्वर्ग के वैभव में इन्द्रों को भी नहीं है। आत्मा स्वयं आनन्द का धाम है। बाह्य वैभव में आत्मा का आनन्द नहीं भरा है। रत्नत्रयवन्त दिगम्बर सन्तों के पास तो कुछ भी बाह्य वैभव नहीं है, वे वस्त्र का धागा भी नहीं रखते तो भी उनके अन्तर में सुख का पार नहीं है। वीतरागता जैसा सुख अन्यत्र कहाँ है ? असंख्य वर्षों तक स्वर्ग में रहनेवाले अज्ञानी को अतीन्द्रिय सुख का एक कण भी नहीं मिलता और निज स्वरूप में लीन होकर मुनिराज अन्तर्मुहूर्त में अचिन्त्य अनन्त सुख प्रकट कर लेते हैं। चैतन्यस्वभाव में ऐसी सामर्थ्य है। आत्मा स्वयं अखूट सुख का भण्डार है, उसमें लीन होकर उसका चिन्तन करने पर वह कल्प

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वृक्ष के समान तत्काल परमसुख प्रदान करता है। कल्पवृक्ष तो इन्द्रियसुखरूप जड़ वस्तुएँ देते हैं, वे कोई सम्यक्त्वादि अतीन्द्रिय वस्तुएँ नहीं देते; परन्तु यह चैतन्य कल्पवृक्ष आत्मा सम्यक्त्वादि अतीन्द्रिय सुख तथा केवलज्ञान और सिद्धपद देता है।

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के समय आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का थोड़ा वेदन होता है। थोड़ा होने पर भी वह अचिन्त्य है, फिर तीनकषाय रहित और तीन रत्नसहित मुनिदशा होने पर आनन्द का वेदन बढ़ता है; फिर स्वरूप में लीन होने पर शुक्ल ध्यान द्वारा श्रेणी माँढ़ने पर आनन्द का वेदन बढ़ता ही जाता है और अन्त में केवलज्ञान होने पर आत्मा परिपूर्ण आनन्दरूप परिणमित हो जाता है।

देखो ! यहाँ आनन्द की शुरुआत से लेकर पूर्णता तक बीच में राग का नाम निशान भी नहीं है। ऐसे रागरहित आनन्द का वेदन सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को भी होता है। जब उपयोग अन्दर में शान्तस्वरूप में स्थिर होता है। 'तब मैं साधक हूँ या सिद्ध हूँ' ऐसा विकल्प भी नहीं होता।

भगवान आत्मा अनन्त शान्तिरूपी बर्फ का पुञ्ज अर्थात् हिमालय पर्वत जैसा है, उसमें से आनन्दरस की गंगा बहती है। स्वयं अरूपी होने पर भी वह ज्ञानस्वरूपी है। अतीन्द्रिय आनन्द ही उसका शरीर है, उस चैतन्यमूर्ति में राग की मलिनता नहीं है। आत्मा के निर्विकल्प अनुभव में जो अकथ्य आनन्द होता है, उसकी क्या बात कहें ? केवली भगवन्तों ने जैसा आनन्दकन्द आत्मा देखा है, छोटे से छोटे धर्मी के अनुभव में भी वैसा आत्मा आता है। उन दोनों के आनन्द के वेदन में अधिकता हीनता है; परन्तु उन दोनों की श्रद्धा में तो एक-सा आत्मा है। जो वाणी द्वारा, विकल्प द्वारा या इन्द्रिय ज्ञान द्वारा वेदा न जाए – ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आनन्द स्वानुभूति में साक्षात् वेदा जाता है। निर्विकल्प वस्तु विकल्प में नहीं आती।

जिसप्रकार क्रोधी जीव कषाय की तीव्रता के समय क्रोध की जलन से झनझना जाता है, उसका शरीर काँपने लगता है; उसीप्रकार धर्मात्मा जीव के असंख्य चैतन्य प्रदेश स्वानुभूति के समय शान्ति के वेदन से झनझना उठते हैं यही अतीन्द्रिय महा-आनन्द है। अत्यन्त गंभीर शान्तरस से भरपूर आत्मा में लीन मुनिराज अपूर्व आनन्द की मौज मनाते हैं। ऐसा आनन्द इन्द्रपद में भी नहीं है। चक्रवर्ती या इन्द्र आदि सम्यग्दृष्टि होते हैं; अतः उन्हें सम्यग्दर्शन की अनुभूति में ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। परन्तु इन्द्रपद या चक्रवर्तीपद के वैभव में वह आनन्द नहीं है, इसलिए वे चैतन्य के आनन्द के समक्ष इन्द्रपद या चक्रवर्तीपद के वैभव को तुच्छ समझते हैं। कहा भी है –

चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखे भोग।
काकबीट सम गिनत हैं, सम्यग्दृष्टि लोग।।

जब सम्यग्दृष्टि गृहस्थ भी ऐसा समझते हैं तो वीतरागी मुनिराजों की क्या बात कहना ? उन्हें तो स्वानुभूति के अपार निधान खुल गए हैं और केवलज्ञान प्रकट करने के लिए निर्मल ध्यान की शुक्लधारा उल्लसित हो रही है। उसमें अब कषाय कलंक या घातिकर्म नहीं टिक सकते, उन्हें क्षणमात्र में ही केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय सहित अर्हन्तदशा प्रकट हो जाएगी। जिसे तीन लोक 'णमो अरहन्ताणं' कहकर वन्दन करता है, उस अर्हन्तदशा की क्या बात ? इन्द्र चक्रवर्ती और गणधरादि मुनिवर भी जिसे नमन करते हैं; उस परमपद की भावना करते हुए श्रीमद् राजचन्द्रजी लिखते हैं –

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चारकर्म घनघाती का व्यवच्छेद जहाँ
जन्म-मरण का बीज मूल से नष्ट कर
सर्वभाव ज्ञाता-दृष्टा युत शुद्धता
कृतकृत्य प्रभुवीर्य अनन्त प्रकाश जो
अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा ?

देखो ! यह सर्वज्ञपद की पहचानपूर्वक सच्ची भावना है। यह सर्वज्ञपद आत्मा का स्वभाव है। अपने स्वसंवेदन ज्ञान से आत्मा का अनुभव होता है। आत्मा के सन्मुख होकर ऐसे परमपद की भावना करना चाहिए, उसके बिना दुःखों का अन्त नहीं आ सकता।

यह छहढाला जैन समाज में अत्यन्त प्रसिद्ध है। बहुत से दिगम्बर भाइयों को यह कंठस्थ है। पाठशालाओं में पाठ्यपुस्तक के रूप में इसे पढ़ाया जाता है। पण्डित दौलतरामजी ने इस छोटी-सी रचना में गागर में सागर के समान अनेक शास्त्रों का सार संक्षेप में भर दिया है।

यह जीव संसार परिभ्रमण करते हुए चारों गतियों में जो दुःख भोग रहा है, उसके वर्णन से यह ग्रन्थ प्रारम्भ किया था, फिर उस दुःख के कारण बताए, उनसे बचने के लिए सम्यग्दर्शनादि उपाय बताए तथा अर्हन्त और सिद्ध दशा तक पहुँचाकर यह शास्त्र पूरा किया है। इस जीव ने वीतराग-विज्ञान के बिना कैसे-कैसे दुःख भोगे और वीतराग-विज्ञान होने पर कैसे अचिन्त्य आनन्दसहित मोक्ष प्राप्त किया – वह सब इसमें बता दिया है। इसमें निगोद के दुःखों से लेकर सिद्धपद के सुख तक के सभी भावों का ज्ञान करा दिया है।

१. प्रारम्भ में मिथ्यात्व से होनेवाले चार गतियों के घोर दुःखों का वर्णन करके संसार का स्वरूप बताया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

२. बीच में (तीसरी-चौथी ढाल में) उन दुःखों से छूटने के उपाय रूप सम्यक्त्वादि का वर्णन करके मोक्षमार्ग का स्वरूप बताया है।

३. अन्त में शुद्धोपयोग द्वारा केवलज्ञानी होकर अनन्तसुख प्राप्त करने का उल्लेख करके मोक्ष का वर्णन किया है।

इसप्रकार इसमें संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष – इन तीनों का स्वरूप कहा है।

१. मिथ्यात्व के कारण यह जीव बहिरात्मा था।

२. सम्यक्त्व प्राप्त करके वह अन्तरात्मा हुआ।

३. केवलज्ञान प्राप्त करके वह परमात्मा हो गया।

इसप्रकार इस ग्रन्थ में बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा – इन तीनों अवस्थाओं का स्वरूप बताया है।

१. मिथ्यात्व के कारण यह जीव, आस्रव और बन्ध में प्रवर्तता था।

२. सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप होने पर संवर-निर्जरा रूप हो गया।

३. केवलज्ञान प्रकट करके मोक्ष प्राप्त किया।

इसप्रकार इस ग्रन्थ में सभी तत्त्वों का वर्णन किया गया है। यहाँ ग्यारहवें छन्द में शुद्धोपयोगी मुनि द्वारा केवलज्ञान प्राप्त करने का वर्णन चल रहा है। बारहवें-तेरहवें छन्द में सिद्धपद प्राप्त करने का वर्णन करते हुए कहेंगे "अहो ! जिसने यह कार्य किया वह जीव धन्य है, धन्य है। जिसने मनुष्य भव पाकर मोक्ष की साधना का महान कार्य किया है वह आत्मा वास्तव में प्रशंसनीय है – ऐसा समझकर हे जीव ! तू भी शीघ्र अपना हित कर ले .. " **'झटिति निज हित करो'** .. "अरे जीव ! राग तो आग है, तू विषय-कषायों की आग में क्यों जल रहा है ? ये विषय तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परपद हैं, इन्हें छोड़ और स्व-पद को सँभालकर सुखी हो जा... यह अवसर मत चूक'' इसप्रकार अन्त में आत्महित की प्रेरणा देकर शास्त्र पूरा करेंगे।

अहो ! मुनियों को अनुभव के आनन्द की लहर में चैतन्यसुख का महासागर उछलता है। इन्द्र या चक्रवर्ती को भी वैसा आनन्द नहीं है। इसकी महिमा की क्या बात ?

प्रश्न – हे गुरुदेव ! आप आत्मा के आनन्द की इतनी महिमा गाते हैं, कृपया हमें ऐसे आनन्द का नमूना बताइये ताकि हमें भी मालूम पड़े।

उत्तर – भाई ! वह आनन्द तो अकथ्य है। वह मूर्तिक नहीं है कि पेड़े जैसा हाथ पर रखकर चखा दिया जाए, उसका स्वाद तो स्वानुभूति द्वारा ही चखा जा सकता है, यही उसका सच्चा नमूना है, दूसरा कौन उसका नमूना बता सकता है ? भगवान और सन्त जिनवाणी में उसका नमूना तो बताते हैं; परन्तु स्वानुभूति बिना उसे चखेगा कौन ?

'मैं तुम्हें शुद्धात्मा दिखाता हूँ तुम उसे अपने स्वानुभव से प्रमाण करना' – ऐसा कहकर आचार्यदेव ने अपने स्वानुभव-वैभव से शुद्धात्मा दिखाया है। जब अपना उपयोग स्व में आए तभी आनन्द के स्वाद की अनुभूति होती है। चैतन्य की एकाग्रता के बिना दूसरी लाखों बातें करें, शुभराग की अनेक प्रवृत्ति करें; परन्तु उसमें आत्मा के आनन्द के स्वाद का नमूना नहीं आता। स्वानुभूति द्वारा ही आत्मा के आनन्द का स्वाद आता है। यही उसका नमूना चखने की रीति है।

लो, चखो ... यहाँ आनन्द का नमूना चखने की रीति बताई है। इसके अलावा जगत में ऐसा दूसरा पदार्थ है ही कहाँ कि जिससे इसका नमूना समझ सकें ? वह तो अनुपम है। अन्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किसी पदार्थ से यह आनन्द दिखाया नहीं जा सकता। सम्यग्दृष्टि से लेकर सर्वज्ञ परमात्मा तक कैसे महा-आनन्द का स्वाद लेते हैं, इसकी सच्ची खबर तो तब पड़ती है कि जब स्वयं अपने में वैसे आनन्द का स्वाद ले। समस्त विकल्पों से पार अद्भुत चैतन्यभण्डार में अनन्त गुणों का रस एकसाथ आ जाता है। सभी ज्ञानी धर्मात्मा ऐसे अपूर्व चैतन्य का स्वाद चखते हैं।

अरे जीव ! आत्मा के आनन्द का स्वाद चखने के लिए तू बहिर्मुख वृत्ति छोड़कर स्वभाव में आ। जगत का कौतूहल छोड़कर आत्मा का अर्थी बनकर एक चैतन्य के अभ्यास में लग जा। यदि तू संसार की पंचायत छोड़कर आत्मा के अनुभव का प्रयत्न ही न करेगा तो तुझे अनुभव कहाँ से होगा ? आचार्यदेव कहते हैं कि यदि तू आत्मा का कौतूहली होकर अर्थात् उसे देखने का उत्सुक होकर प्रयत्न करेगा तो तुझे छह माह के भीतर आत्मा का अनुभव अवश्य होगा। इसलिए –

लाख बात की बात यही निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दन्द-फन्द निज आतम ध्याओ।।

यही बात इस छहढाला से ३२ वर्ष पूर्व रचित छहढाला में पण्डित बुधजनजी ने इसप्रकार कही है –

कोटि बात की बात अरे बुधजन उर धरना।
मन-वच-तन शुचि होय गहो जिनमत का शरना।।

पण्डित बुधजनजी छहढाला के अन्त में कहते हैं कि अरे जीवो ! आत्मा के अनुभवरूप सम्यक्त्व तो अपना सहजस्वभाव है, उसे बाहर से नहीं लाना पड़ता, उसके लिए धन खर्च नहीं करना पड़ता, किसी से लड़ना नहीं पड़ता, किसी से दीनता नहीं करना पड़ती और घर-बार नहीं छोड़ना पड़ता। घर में बैठे-बैठे चैतन्य स्वभाव का अनुभव करने से सम्यक्त्व होता है। इसके बिना चाहे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जितना जप-तप करो या कष्ट सहो, सब वृथा है, इसलिए हे बुधजन ! हे बुद्धिमान सज्जन ! करोड़ों बात के साररूप इस एक बात को तू हृदय में धारण कर..... शुद्धभाव से जिनमत की शरण लेकर सम्यक्त्व धारण कर।

देखो तो जरा ! सादी भाषा में कितनी सुन्दर बात की है.. अरे ! इसे लक्ष्य में तो लो। जिसमें मात्र चैतन्यतत्त्व का रस घुलता है – ऐसे स्वानुभवदशा का आनन्द इन्द्र आदि पद के वैभव में भी नहीं है। अनुभव में लीन होने पर केवलज्ञान होता है अर्थात् परमात्मपदरूप अर्हन्तदशा प्रकट हो जाती है और उनकी वाणी में इसी शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्ग का स्वरूप आता है कि अहो जीवो ! तुम भी ऐसे शुद्धात्मा के अनुभव द्वारा परमपद को प्राप्त करो.....यह आत्मा का सहज स्वभाव है .....'जन्मसिद्ध अधिकार है।

दौलतरामजी ने बुधजनरचित छहढाला के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना की है। अब आगे कहते हैं –

पुनि घाति शेष अघाति विधि छिनमाँहि अष्टम भू वसें,
वसु कर्म विनसे सुगुण वसु सम्यक्त्व आदिक सब लसें।
संसार खार अपार पारावार तरि तीरहिं गए,
अविकार अकल अरूप शुचि चिद्रूप अविनाशी भए।। १२।।

केवली भगवान अर्हन्तपद में विचरण करने के बाद आयु पूर्ण होने पर बाकी बचे अघाति कर्मों का नाश करके तत्काल आठवीं पृथ्वी में स्थित सिद्धालय में जाकर विराजते हैं। उनके आठों कर्म नष्ट हो गए हैं और वे सम्यक्त्वादि अष्ट महागुणों सहित अनन्त गुणों से सुशोभित होते हैं। आठवीं भूमि पर वास, आठ कर्मों का नाश और अष्ट महागुणों के प्रकाश स्वरूप मोक्षपद को प्राप्त करके वे इस अपार खारे संसार समुद्र को तैरकर मोक्षपुरी में पहुँच गए हैं। वे विकार रहित अर्थात् भावकर्म

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहित हैं और शरीर रहित अर्थात् नोकर्म रहित हैं। इसप्रकार से भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म रहित अरूपी शुद्ध चैतन्यस्वरूप मोक्षपुरी में सदा अविनाशीरूप से विराजमान रहते हैं। 'वीतराग-विज्ञान' का यह उत्कृष्ट फल है। तीन लोक के जीव 'णमो सिद्धाणं' कहकर उन्हें नमस्कार करते हैं।

कोई जीव तो केवलज्ञान प्रकट करके तुरन्त अन्तर्मुहूर्त में ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं और कोई जीव आठ वर्ष की उम्र में केवलज्ञान प्रकट करके करोड़पूर्व की आयु पर्यन्त अर्हन्तदशा में विचरण करके मोक्ष प्राप्त करते हैं और मोक्ष होते ही आठवीं पृथ्वी पर जाकर वास करते हैं।

आठवीं पृथ्वी अर्थात् क्या ? अपन सब इस मध्यलोक की पृथ्वी पर रहते हैं। इस पृथ्वी के बीचोंबीच समुद्रादि असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं। इस पृथ्वी के निचले भाग में असुरकुमारादि देव तथा पहले नरक के जीव रहते हैं। फिर नीचे-नीचे पाताल तक अन्य छह पृथ्वियाँ हैं, जिनमें दूसरे से सातवें नरक तक के जीव रहते हैं। इसप्रकार मध्य लोक तक सात पृथ्वी हैं। ऊपर देवलोक में कोई पृथ्वी नहीं है। देवों के विमान पृथ्वी के आधार बिना आकाश में ही होते हैं। सर्वार्थसिद्धि नामक अन्तिम विमान से १२ योजन ऊपर ईषत् प्राग्भार नाम की आठवीं पृथ्वी है। इसीप्रकार रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा महातमःप्रभा और ईषत् प्राग्भार – ये आठ भूमि हैं। धम्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी और माधवी – इन नामों से भी सात पृथ्वियाँ जानी जाती हैं। आठवीं पृथ्वी के बीच में ४५ लाख योजन लम्बी चौड़ी, ढाई द्वीप के ढक्कन के समान अर्द्धगोलाकर सिद्ध शिला है और उससे बारह योजन ऊपर लोकाग्र में सिद्ध भगवन्तों का वास है, इसलिए उन्हें अष्टम भूवासी कहा जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सिद्धों का स्वरूप

निज माँहि लोक-अलोक गुण-परजाय प्रतिबिम्बित थए,
रहिहें अनन्तानन्तकाल तथा यथा शिव परिणए।
धनि-धन्य हैं जे जीव नरभव पाय यह कारज किया,
तिनही अनादि भ्रमण पञ्चप्रकार तजि वर सुख लिया।। १३।।

४५ लाख योजन विस्तार वाले सिद्धलोक में अनन्त सिद्धजीव रहते हैं। प्रत्येक छह माह आठ समय में ६०८ जीव अर्थात् प्रतिवर्ष १२१६ जीव संसार से छूटकर मोक्षपुरी में जाते हैं तो भी वहाँ कभी भीड़ नहीं होती। एक स्थान पर अनन्त जीव रहते हैं तो भी वे एक दूसरे को बाधा पहुँचाए बिना अपने-अपने स्वरूप में अनन्तकाल तक अनन्त सुख में लीन रहते हैं, पुनः कभी संसार में नहीं आते।

सिद्ध भगवान को निश्चय से अनन्तगुण हैं अर्थात् उन सबमें शुद्धता प्रकट हो गई है; परन्तु व्यवहार में उनके आठ गुण प्रसिद्ध हैं। (१) क्षायिक सम्यक्त्व (२) अनन्तज्ञान (३) अनन्तदर्शन (४) अनन्तवीर्य (५) सूक्ष्मत्व (६) अवगाहनत्व (७) अगुरुलघुत्व (८) अव्याबाधत्व। सिद्ध भगवान इन सभी गुणों की शुद्धता से सुशोभित हो रहे हैं।

यह असार संसार खारा है अर्थात् दुःखरूप है। खारा शब्द से खारे स्वाद का आशय नहीं है, अपितु राग-द्वेषादि आकुलता का आशय समझना चाहिए। संसार में चैतन्य को मधुर शान्त स्वाद नहीं है, इसलिए नीरस होने से उसे खारा कहा है। कहा भी है **'सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा'** – ऐसे असार और अपार संसार को मुनिराज रत्नत्रय नौका पर बैठकर पार करके मोक्ष में पहुँच गए हैं। वे मुनिराज धन्य हैं; वे दुःखसमुद्र से पार होकर सुखसमुद्र में लीन हो गए। आत्मा को ज्ञानार्णव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थात् ज्ञान का समुद्र या चैतन्य रत्नाकर कहा जाता है; क्योंकि वह चैतन्य आदि अनन्त रत्नों से भरा है। सिद्ध भगवान उन समस्त गुण रत्नों को प्रकट करके मोक्षनगरी में अविनाशी चैतन्यरूप से सुशोभित हो रहे हैं। मोक्ष में जीव का या ज्ञान का अभाव नहीं हो जाता, वहाँ तो जीव शुद्ध चैतन्यस्वरूप, अपने अनन्त गुणों सहित शुद्धस्वरूप अस्तित्व में सदाकाल सुशोभित हो रहा है। संसार अवस्था में तो जीव का सद्भाव हो, वह अपने सुख-दुःख को स्वतंत्र रूप से भोगे और यदि मुक्त होने पर जीव का अभाव हो जाये तो ऐसे मोक्ष को कौन चाहेगा ? ऐसा कौन मूर्ख होगा जो अपने ही अभाव को चाहे ? इसलिए कहा है कि मोक्षदशा में आठों कर्मों का नाश होता है और जीव सम्यक्त्वादि अष्ट महागुणों से सुशोभित होता है। कहा भी है –

है अष्टकर्म विनष्ट अष्ट महागुणों से युक्त हैं।
शाश्वत, परम अरु लोक-अग्र विराजमान सुसिद्ध हैं।।

सिद्ध भगवान को जगत में प्रसिद्ध, शाश्वत, महान आनन्द प्रकट हो गया। सिद्ध भगवान भी जगत में प्रसिद्ध हैं। उनकी स्तुति करते हुए मुनिराज कहते हैं – "हे भगवन ! आप सम्यग्ज्ञान रूपी नाव में बैठकर भव समुद्र को पार करके शाश्वत सिद्धपुर में पहुँच गए हैं। हे प्रभो ! मैं भी आपके मार्ग पर चलकर शाश्वतपुरी में आ रहा हूँ, क्योंकि इस लोक में उत्तम पुरुषों को अन्य कोई शरण नहीं है।"

अहो ! भव्यजीव वीतराग–विज्ञान द्वारा संसार दुःखों से छूटकर सिद्ध सुख को प्राप्त करते हैं। कहाँ निगोद के दुःख और कहाँ सिद्धों का सुख ? मुनिराज वीतराग–विज्ञानरूपी नौका पर चढ़कर संसार के दुःख समुद्र को पार करके मुक्तिपुरी में पहुँच गए हैं। रत्नत्रयरूप परिणमित जीव ही वास्तव में उत्तम तीर्थ हैं; क्योंकि वह रत्नत्रय नौका पर चढ़कर भवसमुद्र से पार हो जाता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। पर्वत आदि तो उपचार से (स्थापना निक्षेप से) तीर्थ हैं तथा रत्नत्रययुक्त जीव भावनिक्षेप से तीर्थ है। शास्त्रों में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, भेद–विज्ञान, वीतराग–विज्ञान तथा रत्नत्रय आदि को नौका की उपमा दी गई है। उनमें बैठनेवाला अर्थात् उन भावों को प्रकट करनेवाला जीव संसार सागर पार करके मोक्ष नगरी में अवश्य पहुँच जाता है। आचार्य अमृतचन्द्र कुन्दकुन्द स्वामी के लिए अत्यन्त बहुमानपूर्वक **आसन्नसंसार पारावारपार**..... लिखते हैं अर्थात् उनके संसार समुद्र का किनारा अत्यन्त निकट आ गया है।

देखो ..... वीतराग मार्ग में मुनियों का स्वरूप ! अरे ! जहाँ आत्मा का अनुभव हुआ, वहाँ अव्रत सम्यग्दृष्टि को भी संसार का किनारा समीप आ गया है। मुनियों को तो संसार का किनारा अत्यन्त निकट है और अरहन्त तो केवलज्ञान प्रकट करके मोक्षपुरी में पहुँच गये हैं अब वे 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में' लीन रहेंगे। अनन्तकाल तक उस सुख का वेदन करते रहने पर भी थकान नहीं होती। थकान तो मोह में होती है। जहाँ मोह नहीं वहाँ थकान कैसी ?

प्रवचनसार में कहा है – "अतीन्द्रिय सुख में लीन केवली भगवान को मात्र परिणमन के कारण अर्थात् लोकालोक को जानने के कारण कोई थकान या खेद नहीं होता। थकान तो मोह अर्थात् कषायरूप परिणमन में होती है, ज्ञानरूप परिणमन में खेद या थकान कैसी ? यह तो स्वाभाविक-क्षायिकी क्रिया है।" अरे ! वहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि अरहन्त भगवन्तों की वाणी-विहार आदि क्रियायें यद्यपि कर्मोदय से होने के कारण औदयिकी हैं, परन्तु मोहरहित होने से वे क्रियायें विकार का और नवीन कर्मबन्ध का कारण नहीं होतीं; अपितु पुराना कर्म क्षय होता जाता है। अतः औदयिकी क्रियाओं को क्षायिकी ही क्यों न माना जाए ? देखो यह क्षायिक चैतन्यभाव की महिमा ! उसके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जोर में औदयिकी क्रियाओं को भी क्षायिकी कहा जाता है।

चैतन्यभाव और रागादि उदयभावों के भेदज्ञान द्वारा केवलज्ञान की साधना करनेवालों को ही केवली भगवान द्वारा कही गई यह बात समझ में आती है। तीर्थंकरों को विहार-दिव्यध्वनि आदि क्रियायें होने पर भी प्रतिक्षण उनके पूर्व कर्मों का क्षय होता जाता है। जहाँ मोह नहीं है, वहाँ चैतन्य में विकार कैसा ? और जहाँ विकार नहीं वहाँ बन्धन कैसा ? धर्मीजीव को चतुर्थगुणस्थान में भी अबन्धस्वरूप चैतन्यस्वभाव का अंश वर्तता है और उसके बल से वह उदयभावों से भिन्न आत्मा को साधता है और फिर चैतन्य के अनुभव के बल से आगे बढ़कर, मुनि होकर मोह का सर्वथा छेदन कर केवलज्ञान प्रकट कर परमात्मा होकर मोक्षपुरी में जाता है। धन्य हैं वे जीव ! जिन्होंने यह उत्तम कार्य किया।

धनि धन्य हैं जे जीव, नरभव पाय यह कारज किया।
तिनही अनादि भ्रमण पञ्चप्रकार तजि वर सुख लिया।।

देखो ! मनुष्य पर्याय में वीतराग-विज्ञान प्रकट करके सिद्धपद की साधना करनेवाला धन्यवाद के योग्य है। आचार्य कुन्दकुन्द अष्टपाहुड़ में सम्यग्दर्शन प्रकट करनेवाले जीव की भी 'धन्य' कहकर प्रशंसा करते हैं, तो फिर सिद्धपद साधनेवालों की प्रशंसा और महिमा की क्या बात कहें ? धन्य ... धन्य कहकर स्वयं उस महान पद की भावना और अनुमोदना करते हैं कि अहो ! ऐसा अचिन्त्य सिद्धपद मैं कब प्राप्त करूँगा ? इस संसार से छूटकर सिद्धालय में कब स्थिर होऊँगा और अपने चिदानन्द स्वरूप में स्थिर रहकर सदाकाल पूर्ण आनन्द को भोगूँगा ? सम्यग्दृष्टि को साधकदशा तो प्रकट हो गई है अर्थात् ऐसे परम पद प्राप्ति का धन्य अवसर अल्पकाल में जरूर आएगा। सम्यग्दर्शन हुआ अर्थात् अब सिद्धपद होकर ही रहेगा।

देखो भाई ! मनुष्य पर्याय प्राप्त कर जो ऐसा काम करे,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसे धन्य कहा है; परन्तु जो बाहर में बड़ी पदवी प्राप्त करे, धन के ढेर इकट्ठा करे या शुभराग करे – उसे धन्य नहीं कहा। आत्मा को भूलकर भव-समुद्र में डूबनेवाले को धन्य कौन कहेगा ? आत्मा को पहचान कर भवसागर से पार उतरनेवाला ही वास्तव में धन्य है ... धन्य है, लाखों बार धन्य है।

सिद्ध भगवन्तों को शरीर नहीं है, फिर भी वे महान सुखी हैं। इससे सिद्ध होता है कि सुख आत्मा का अपना स्वभाव है, शरीर या विषयों में सुख नहीं है। सिद्ध भगवान अपने स्वरूप में रहकर ऐसे महान सुख को सादि-अनन्त-कालतक भोगते रहेंगे। संसार के भूतकाल की अपेक्षा सिद्धपद का भविष्यकाल अनन्तगुना है। चैतन्य स्वभाव की असंख्य समय की साधना के फल में अनन्तकाल का अनन्त सुख प्रकट हो जाता है। मोक्षमार्ग शुरु होने के बाद मोक्ष को साधने में अनन्तकाल नहीं लगता; मोक्षमार्ग का काल कुल मिलाकर असंख्य समय का ही होता है; उस असंख्य समय की आत्म-साधना के फल में प्रकट होनेवाला सिद्ध सुख अनन्त-अनन्त कालतक रहनेवाला है। भवदुःख का तो अन्त आ गया, इस मोक्ष सुख का अन्त कभी नहीं आएगा। अब यह मोक्षसुख कभी जाएगा नहीं और भवदुःख कभी आएगा नहीं – ऐसी दशा धन्य है, धन्य है।

अनादिकाल का भवदुःख मिटाने के लिए और अनन्तकाल का मोक्षसुख साधने के लिए अनन्तकाल नहीं लगता। आत्मा अपने स्वभाव की सामर्थ्य से असंख्य समय में ही सिद्धपद साध लेता है। ध्रुव स्वभाव के अवलम्बन से प्रकट होनेवाली सिद्ध पर्याय भी स्वभावभूत होने से ध्रुव है। ध्रुव चिदानन्दस्वभाव में स्थिरता करना ही अनन्तकाल तक मोक्ष में स्थिर रहने का उपाय है।

अहो ! जिसने ऐसी साधना करके सिद्धपद को साध लिया, वह धन्य है, धन्य है। यद्यपि उस जीव को धन्यवाद नहीं चाहिए; तथापि अपने को उसके प्रति प्रमोद का बहुमान का भाव आता है;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसलिए धन्य-धन्य कहकर स्वयं भी उस दशा को प्राप्त करने की भावना और अनुमोदना करते हैं।

चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धात्मा के आश्रय से होनेवाला सम्यग्दर्शन सिद्धदशा में भी रहता है। सिद्धदशा में शरीर और रागादि नहीं रहते, पुण्य-पाप नहीं रहते; परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-सुख आदि रहते हैं।

संसार से मोक्ष होता है; परन्तु मोक्ष से पुनः संसार नहीं होता, क्योंकि मोक्षदशा स्वभावभूत है, प्रकट होने के बाद उसका कभी नाश नहीं होता, जबकि विभाव का नाश हो जाता है। जिस प्रकार चने को सेंकने के बाद वह दुबारा नहीं उगता और उसका स्वाद भी मीठा हो जाता है; उसीप्रकार आनन्द की मिठास से भरपूर चैतन्यरूपी चने को रत्नत्रय के ताप से सेंकने पर उसमें भव के बीजरूप विभाव का सर्वथा नाश हो जाता है और फिर पुनः विभाव या संसार नहीं होता तथा उसमें से अतीन्द्रिय आनन्द का मीठा स्वाद आता है। सिद्ध भगवन्तों की शान्ति अनन्तकाल तक वैसी की वैसी ताजी रहती है, वह कभी बासी नहीं होती और उन्हें कंटाला (अरुचि) नहीं होता।

अहो ! जिसने सिद्धपद की साधना का महान कार्य किया, वह जीव धन्यवाद का पात्र है। सर्वप्रथम ऐसे उत्तम मोक्षपद की और उसकी प्राप्ति के शुद्धमार्ग को पहचानकर उसकी प्रतीति करना चाहिये। अहो जीवो ! यह उपदेश सुनकर तुम वीतराग-विज्ञान का आदर करो, इसी में मनुष्य भव की सफलता है और यह कार्य करनेवाला जीव ही धन्य है। रत्नचिन्तामणि के समान इस मनुष्य भव को विषयों में खोने वाले जीव तो मनुष्य भव हारकर भवसमुद्र में डूबते हैं और दुःखी होते हैं। ऐसे जीवों पर करुणा करके सन्तों ने **'दुःखहारी और सुखकार'** शिक्षा दी है। हे भव्य जीवो ! उसे सुनकर आत्महत में प्रवृत्ति करो।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुख्योपचार दु भेद यों बड़भागि रत्नत्रय धरें।
अरु धरेंगे ते शिव लहें, तिन सुयश-जल जग-मल हरें।।
इमि जानि, आलस हानि, साहस ठानि, यह सिख आदरो।
जबलों न रोग जरा गहे, तबलों झटिति निज हित करो।। १४।।

निश्चय और व्यवहार अथवा मुख्य और उपचार – ऐसे दो भेदरूप रत्नत्रय को जो महा-भाग्यवान मोक्षार्थी जीव धारण करते हैं और करेंगे वे ही मोक्षरूप कल्याण प्राप्त करते हैं। ऐसे मोक्षगामी महात्माओं का सुयशरूपी पवित्र जल जगत के जीवों के मिथ्यात्व आदि मैल को धो देता है। उनके द्वारा बताए गए मोक्षमार्गरूप उपदेश को अंगीकार करने वाले जीव अपने कषाय कलंक को दूर कर देते हैं।

इस ग्रन्थ में चारों गतियों के महान दुःख और मोक्ष के परम सुख का वर्णन किया है और दुःखों से छूटने के लिये रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग का स्वरूप भी बताया है। यह सब जानकर आलस दूर करो.....साहस धारण करो .... श्रीगुरु की शिक्षा आदरपूर्वक ग्रहण करके परम उद्यम से रत्नत्रय धर्म की आराधना करने का यह अवसर आया है, इसलिए रोग, बुढ़ापा आदि शरीर को घेर लें और इन्द्रियाँ शिथिल हो जायें, इससे पूर्व ही जाग्रत होकर शीघ्र ही अपना हित कर लो।

देखो ! कितना मधुर उपदेश दिया है। अब यह छहढाला ग्रन्थ पूर्ण होनेवाला है; इसलिए शिक्षा देते हैं कि हे जीव ! यह उपदेश ग्रहण करके तू शीघ्र अपना हित करले, अभी नहीं करेगा तो कब करेगा ? 'अभी तो जवानी है, बाद में कर लेंगे' – इसप्रकार शरीर के भरोसे मत रहना। कब कैसा रोग आ जाए, बुढ़ापा आ जाए, अरे ! जवानी में भी हार्टफैल हो जाता है; इसलिए इसी समय आत्महित का प्रयत्न कर...आलस मत कर.....आलस छोड़कर साहस धारण कर। जिसप्रकार युद्ध में सुभट शूरवीर होकर दृढ़

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निश्चय करके लड़ता है, उसीप्रकार तू आत्मसाधना के लिए अपूर्व साहस धारण करके शूरवीर हो मरण की परवाह न करके मोह से युद्ध कर। जिसमें पीछे न हटना पड़े – ऐसा अखण्ड पुरुषार्थ प्रकट करके शीघ्र ही अपना आत्महित करले। तू यह उत्तम शिक्षा अंगीकार कर।

मंगलाचरण के बाद पहले ही छन्द में कहा था –

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त सुख चाहें दुःख तैं भयवन्त।
तातैं दुःखहारी सुखकार, कहें सीख गुरु करुणा धार।।

और अब ग्रन्थ पूर्ण करते हुए शिक्षा देते हैं –

इमि जानि, आलस हानि, साहस ठानि, यह सिख आदरो।
जबलों न रोग जरा गहे, तबलों झटिति निज हित करो।। १४।।

प्रथम छन्द में भी 'सीख' शब्द था और यहाँ भी 'सीख' शब्द है। करुणावन्त गुरुओं ने शास्त्रों में जीव के दुःख दूर करनेवाले और सुख उत्पन्न करनेवाले वीतराग-विज्ञान का उपदेश दिया है – उसे इस शास्त्र से जानकर आदरपूर्वक ग्रहण करो ! आलस छोड़कर महान उद्यमपूर्वक वीतरागी रत्नत्रय की आराधना में लग जाओ। जितने जीव मोक्ष में गए हैं और जायेंगे, वे सभी रत्नत्रय की आराधना करके ही मोक्ष गए हैं और जायेंगे। बड़भागी अर्थात् महान भाग्यशाली मोक्षगामी जीव रत्नत्रय धारण करते हैं। रत्नत्रय जैसा महान धन जगत में और कोई नहीं है।

यहाँ बहुत पैसेवाले भाग्यवान हैं – ऐसा नहीं कहा ? यहाँ तो रत्नत्रयधारी महात्माओं को महान भाग्यशाली कहा है। यह रत्नत्रय की आराधना का अवसर है, इसलिए शीघ्र ही अपना हित कर लो।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव भावप्राभृत गाथा १३२ में कहते हैं कि हे जीव ! जब तक वृद्धावस्था आक्रमण न करे, रोगरूपी अग्नि तेरी काया कुटी को जला न दे और इन्द्रियों का बल गलित न

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो जाए, उसके पहले ही तू सम्यक्त्वादि भावों से अपना आत्महित करले। हे महासत्व ! महान पुरुषार्थी ! आत्मा की अपूर्व भावना भा।

वीतरागभावरूप शुद्ध अभेदरत्नत्रय मुख्य है, वह निश्चय मोक्षमार्ग है और उसमें तीन भेद करके समझाना अथवा गुणस्थान अनुसार होनेवाले रागादि को मिलाकर रत्नत्रय का कथन करना उपचार है, व्यवहार है।

राग के साथ भी आंशिक शुद्धता तो रहती ही है। चौथे, पाँचवें और छठवें गुणस्थान में जितनी शुद्धता है, उतना निश्चय-मोक्षमार्ग है। जो बिना विलम्ब के, बिना आलस के महान पुरुषार्थ का साहस करके ऐसे मोक्षमार्ग को धारण करते हैं; वे बड़भागी हैं, धन्य हैं, कृतार्थ हैं, उन्होंने करने योग्य उत्तम कार्य किया है। वे साहस अर्थात् अपूर्व स्ववीर्य-पराक्रम से अपने मोक्ष की रचना करते हैं। वे ही सच्चे वीर हैं। विकार की रचना करके संसार में रखड़नेवाले को वीर कौन कहेगा? यह जीव अनादिकाल से स्ववीर्य की सामर्थ्य को भूलकर परसन्मुख हो रहा है। अब यह परसन्मुखता छोड़कर अपनी वीर्यशक्ति को स्वभाव की ओर उछालकर स्वसन्मुख होकर अपूर्व चैतन्य पुरुषार्थ करता है, यही सच्ची बहादुरी है, सच्ची वीरता है, यही प्रशंसनीय है। दूसरों के साथ लड़ने की बहादुरी तो कषाय है।

ध्यान के द्वारा आत्मा का अनुभव करनेवाले को निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय एक साथ होते हैं, वही जीव 'महाभागी' हैं। भगवान के १००८ मंगलनामों में एक नाम 'महाभाग' भी है। यहाँ मोक्षरूपी महान भाग्य की बात है, पुण्यजनित लौकिक भाग्य की बात नहीं है। चैतन्य के वैभव के सामने सम्पूर्णजगत का वैभव तुच्छ है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त करके केवलज्ञान का पराक्रम करनेवाले महात्माओं का उज्ज्वल यश, उनका गुणगान,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उनकी सच्ची पहचान संसारी जीवों के मैल का नाश करती है। ऐसे मोक्षसाधक महात्मा जगत में धन्य हैं।

जगत में अनन्त विशुद्ध सिद्ध भगवन्तों का समूह प्रसिद्ध है। जो अत्यन्त महिमापूर्वक अतीन्द्रिय सिद्ध भगवन्तों के शुद्ध अस्तित्व का लक्ष्य करके उनका ध्यान करता है, उसके मिथ्यात्व मैल का नाश होकर सम्यक्त्वादि प्रकट हो जाते हैं अर्थात् सिद्ध भगवान उस पर प्रसन्न हुए – ऐसा कहा जाता है। सिद्ध पूजन में आता है – "प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह"। यहाँ 'प्रसीद' का अर्थ है प्रसन्न होओ। सिद्ध भगवन्तों का स्वरूप विकल्पों द्वारा लक्ष्य में नहीं आता। विकल्पों से भिन्न अन्तर्मुख ज्ञान से ही सिद्धों का लक्ष्य होता है।

सिद्धपद की प्राप्ति शुद्धोपयोगियों को होती है। प्रवचनसार गाथा २७३ में कुन्दकुन्दप्रभु ने 'सकल महिमावन्त भगवन्त' कहकर शुद्धोपयोग रूप परिणमित जीवों की बहुत महिमा की है। वे सकल महिमावन्त भगवन्त कर्मों का आवरण तोड़कर केवलज्ञान प्रकट करने के लिए उग्र पराक्रम कर रहे हैं। उनका शुद्धोपयोग सर्व मनोरथों का स्थान है। मुमुक्षुओं के सर्व मनोरथ अर्थात् केवलज्ञान, सिद्धपद आदि उसी से सिद्ध होते हैं, इसलिए हे जीव ! तुम शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्ग द्वारा शीघ्र अपना हित कर लो। ऐसे मोक्षमार्गी बड़भागी धर्मात्माओं का आदरपूर्वक यशगान करो। उससे भी पापकलंक दूर होता है।

अरे ! यह मनुष्य अवतार और उत्तम जैनधर्म पाकर तुझे अल्पकाल में मोक्ष को साधना है; फिर आलस क्यों करता है ? तू बाहर के सांसारिक कार्यों और रागादि के कार्यों में जितना प्रयत्न करता है – वह सब प्रमाद है, आलस है। अतः इन कार्यों का रस छोड़कर चैतन्य को साधने का वीतरागी प्रयत्न करो, आत्मा को साधने की हिम्मत करो ..... साहस करो ..... कटिबद्ध होकर उसमें लग जाओ ..... उसका फल अवश्य आएगा। अपना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हित करने के लिए जो अन्तर से जाग्रत होता है, उसे अपने में से ही हित का मार्ग अवश्य प्राप्त होता है। आत्मा के स्वभाव में सुख भरा है और उसके अनुभव का उपाय भी अपने में ही है; इसलिए अपूर्व साहस करके मोक्ष को साधने का पराक्रम झट प्रकट करो। 'मैं मोक्ष का पात्र हूँ, संसार भ्रमण मुझे शोभा नहीं देता, अब उसका अन्त करने के लिए मैं मुक्ति के मार्ग में आता हूँ' – ऐसे उल्लसित परिणामों से अपना हित करने का यह उत्तम अवसर है।

यह शरीर, इन्द्रिय बल, आयुष्य, बाह्य संयोग आदि सदा टिकनेवाले नहीं हैं, क्षणमात्र में छूट जायेंगे, इसलिए उनके भरोसे न रहकर असंयोगी चैतन्यतत्त्व के अवलम्बन से अपना हित कर लो ....शीघ्र आत्महित साध लो।

भोगभूमि में भगवान ऋषभदेव के जीव को सम्बोधन करने के लिए गए मुनिराज कहते हैं – 'हे आर्य ! तू सम्यक्त्व को ग्रहण कर... अद्य अर्थात् आज ही इसी समय तू सम्यक्त्व ग्रहण कर.... इसीलिए हम तुम्हें सम्बोधन करने के लिए यहाँ आये हैं' और वह बड़भागी जीव सचमुच उसी समय उन मुनिवरों की उपस्थिति में अन्तर्मुख होकर सम्यक्त्व प्रकट कर लेता है। इसीप्रकार यहाँ भी श्रीगुरु कहते हैं कि दुःख से छूटकर सुखी होने के लिए यह उपदेश ग्रहण करके तुम झटिति निज हित करो।

दाव मत चूको यहै

यह राग आग दहे सदा, तातैं समामृत सेइये,
चिर भजे विषय-कषाय अब तो त्याग, निज पद बेइये।
कहा रच्यो परपद में न तेरो पद यहै, क्यों दुःख सहे ?
अब 'दौल' होऊ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूको यहै।।१५।।

यह राग रूपी आग जीव को सदा जलाती है, उससे बचने के लिए चैतन्य के समरसरूपी अमृत का सेवन करो। अरे जीव !

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विषय-कषायों को तो तूने अनादिकाल से भोगा और दुःखी हुआ, अब तो उन्हें छोड़ ! और निजपद को सँभाल ! उसी में तेरा सुख है। तू रागादि परपद में क्यों रच रहा है ? यह तेरा स्वपद नहीं है, पर-पद की ममता से मुफ्त का दुःख क्यों सहन कर रहा है। अब तू अपने चैतन्यमय स्वपद की रचना कर और सुखी हो। यह दाव अर्थात् आत्महित का उत्तम अवसर तू मत चूक।

यह छहढाला ग्रन्थ का अन्तिम छन्द है। इसमें शास्त्रकार अन्तिम शिक्षा देते हैं।

देखो ! कितनी सुन्दर बात करते हैं। संक्षेप में सीधी-सादी और महत्वपूर्ण बात कह दी है। राग तो आग समान है, वह जीव को सदा दुःख में जलाता है। चैतन्य तत्त्व में शान्ति का अमृत भरा है, इसलिए राग की आग में जलना छोड़कर चैतन्य के शान्तरस का पान करो। देखो ! कैसी सीधी बात है। राग में दुःख है और चैतन्य की शान्ति में सुख है – इससे कौन इन्कार कर सकता है ?

यहाँ 'राग' को आग कहा है, राग के साथ द्वेष, मोह, मिथ्यात्व, क्रोध, अज्ञान, पाप-पुण्य ये सभी विभाव भी आग जैसे दुःखदायक हैं, क्योंकि ये सभी भाव राग की जाति के हैं, चैतन्य की जाति के नहीं हैं, ये स्व-पद नहीं हैं, पर-पद हैं।

अनादि से रागादि को अपना मानकर तू पर-पद में सो रहा है, परन्तु हे भाई ! तू जाग कर देख – यह राग तेरा पद नहीं है, तेरा पद तो आनन्द से भरपूर चैतन्यस्वरूप है, तू अपने ऐसे निज पद में आ, आ; – इसप्रकार सन्त तुझे बुलाते हैं।

भगवान आत्मा एकदम शान्त और शीतलस्वभावी है, क्या उसे कषाय के आसन पर बिठाया जा सकता है ? नहीं, नहीं; कषाय में तो उसे जलन होती है, दुःख होता है, चाहे शुभरागरूप सूक्ष्मकषाय भी क्यों न हो। 'सुकुमाल' का स्वरूप इतना कोमल

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

था कि उन्हें राई का एक दाना भी चुभता था, शान्ति से नहीं बैठने देता था। इसीप्रकार शीतलता के नाथ शान्ति के पिण्ड भगवान आत्मा का चैतन्य शरीर इतना कोमल अर्थात् शान्त है कि उसे राई के दाने जैसा कषायकण भी अशान्त और दुःखी करता है, चैतन्य स्वरूप को वह सहन नहीं होता।

अनादि से तेरी आत्मा में राग की रुचिरूप आग लगी है, उसमें तेरी चेतना जलकर दुःखी हो रही है, उसे बचाने के लिए, आग ठंडी करने के लिए पहले राग को अपने चैतन्यस्वभाव से भिन्न तो जान ! भेदज्ञान तो कर ! राग को लाभदायक मानेगा तो उसे ठंडा कब करेगा ? तेरे चैतन्य में समभावरूपी अमृत भरा है, उसके द्वारा राग की आग को शीघ्र ठंडा कर दे। विषय-कषायों को बहुत समय से भोगा, विचार तो कर उसमें तुझे क्या सुख मिला ? जरा भी सुख नहीं मिला, मात्र दुःख ही मिला तो फिर उन्हें अब तो छोड़ और अपने चैतन्यमय स्व-घर में जरा नजर तो कर, इसमें कितनी अपार शान्ति भरी है; उसके उपशमरस से आकुलता की आग बुझ जायेगी। बाहर में सुख की भ्रान्ति मिथ्या है और आत्मा में सच्ची शान्ति है। भ्रान्ति छोड़कर शान्ति में आ।

जैसे पापरूप राग में आकुलता और दुःख है, वैसे शुभराग में भी आकुलता और दुःख है। भगवान आत्मा पाप-पुण्य सभी रागों से रहित, शान्ति से भरपूर हैं और धर्मात्माओं की विश्रान्ति का धाम है। समवशरण में इन्द्रादिक को विश्रान्ति के लिए दिव्य स्थान प्राप्त होता है। अहा ! स्वर्ग के इन्द्र भी जहाँ विश्राम करते हैं, वह स्थान कैसा होगा ! यह चैतन्यधाम भगवान आत्मा भी ऐसा अद्भुत है कि इसमें बड़े-बड़े धर्मात्मा मुनीन्द्रादिक भी विश्राम करते हैं – इसमें अद्भुत शान्ति हैं। समवशरण में जहाँ इन्द्र विश्राम करते हैं, वह तो चन्द्रकान्तमणि की जड़ शिला है और धर्मात्मा जहाँ विश्राम करते हैं वह चैतन्यमय अद्भुत शान्त-शिला

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं, उसमें शान्त उपशम रस झरता है।

भाई ! यह कोई दूसरे की बात नहीं है, तेरे आत्मा की बात है। तू राग की आग में जल रहा है, उससे छुड़ाने के लिए तुझे तेरा निजपद दिखाते हैं कि 'निजपद में अद्भुत मजे की शांति भरी है, तू पर में रच-पच कर व्यर्थ का दुःख क्यों सहन करता हैं ? बापू ! तेरा आत्मा विषय-कषाय की आग में बहुत जला, बहुत लम्बे काल से अनादि से जला..... अब तो अपनी दया कर, अपने आत्मा को उस आग में से बाहर निकाल' – इसप्रकार कवि दौलतरामजी स्वयं अपने आत्मा को भी संबोधित करते हैं और भव्यजीवों को भी संबोधित करते हैं कि अब यह अवसर मत चूक, तुझमें चैतन्य का अमृत भरा है उसके द्वारा अपने को कषाय की आग में से बचा ले।

ज्ञानामृत का पान करना ही कषाय की आग से बचने का उपाय हैं। अरे ! कहाँ चार गति में विषय-कषाय के दुःख और कहाँ आत्मा के अनुभव की अर्पूव शान्ति ! आत्मज्ञान से रहित देव भी चैतन्य की शान्ति के बिना कषायों में सुलग रहे हैं। यह जीव मात्र अशुभराग में जलता है – ऐसा नहीं हैं, शुभ हो या अशुभ, मोह-राग-द्वेषरूपी सभी कषायों में जलन और अशान्ति है, उनमें जीव सुलग रहा है। यदि बाहर में शरीर सुलगे तो उससे आत्मा को कोई दुःख नहीं है, परन्तु अन्दर में कषाय की आग सुलगती है तो आत्मा जलता है।

देखो न ! यहाँ सोनगढ़ से २२ कि.मी. दूर शत्रुंजय पहाड़ पर पाँच पांडव मुनिराज आत्मध्यान में लीन थे, उन्हें अग्नि से तप्त कड़े पहनाकर भयंकर उपसर्ग किया गया। बाहर में शरीर तो सुलगता था; परन्तु अन्तर में चैतन्य की निर्विकल्प अनुभव की परम शान्ति के बल से उन्होंने कषायाग्नि उत्पन्न नहीं होने दी, उनका आत्मा कषाय में नहीं जला; परन्तु चैतन्य की परम शीतलता में ऐसा ठहरा कि युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन – इन तीन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुनिराजों ने उसीसमय केवलज्ञान प्रकट करके मोक्ष प्राप्त कर लिया और शेष मुनिराज भी क्रोध रहित समभाव से उपसर्ग जीत कर सर्वार्थसिद्धि में गए। देख ! चैतन्य में शान्ति की कितनी ताकत है कि एक ओर शरीर जले और दूसरी ओर आत्मा केवलज्ञान प्राप्त कर ले ! तेरा निजपद ऐसे स्वभाववाला है, तू उसे सँभाल, उसका अनुभव कर। स्वानुभव जल के अलावा और किसी प्रकार से कषाय की अग्नि नहीं बुझेगी। धन्य हैं वे मुनि भगवन्त, जिन्होंने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करके आत्मा को विषय-कषायों की आग में से बाहर निकाला है और उसे मोक्षपुरी की ओर ले जा रहे हैं। वे मुनिवर कहते हैं हे भव्यजीवो ! तुम भी चैतन्य के समरस का पान करके मोक्षपुरी में आओ।

यहाँ पण्डित दौलतरामजी ने जो निजपद का सेवन करने की और परपद को छोड़ने की प्रेरणा दी है, वह समयसारादि ग्रन्थों के अनुसार लिखी है।

समयसार गाथा २०३ में शिष्य पूछता है कि हे स्वामी ! आत्मा का निज पद कैसा है ? तो श्री गुरु कहते हैं –

स्वानुभूति गम्य है जो नियत थिर निज भाव ही।
अपद पद सब छोड़ ग्रह वह एक नित्य स्वभाव ही ।।

रागादि विभाव आत्मा के ज्ञानस्वभावरूप से अनुभव में नहीं आते, भिन्नरूप से अनुभव में आते हैं – उनमें तेरा पद नहीं; आत्मा के स्वभाव से अभेदरूप अनुभव में आनेवाला, चैतन्यरस के स्वादरूप परमार्थ ही तेरा पद है। हे भव्य ! यह एक चैतन्यपद ही स्वाद लेने योग्य है, उसमें कोई विपदा नहीं हैं। तेरा निजपद विपदाओं का अपद है, उसमें रागादि विभाव नहीं हैं। कोई विरला जीव ही निजपद की प्राप्ति करता है। यदि तू दुःख से छूटना चाहता है तो ऐसे निजपद का अनुभव कर।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आचार्यदेव अत्यन्त मधुरता से कहते हैं कि हे भव्य ....

इसमें सदा रतिवन्त हो इसमें सदा सन्तुष्ट हो।
इससे ही हो तू तृप्त तुझको सौख्य उत्तम हो अहो।।

अचिन्त्य शक्तिवाला तेरा आत्मा स्वयं ही सर्व मनोरथों को सिद्ध करनेवाला इष्टदेव है। ऐसे चैतन्यस्वभाव को अत्यन्त प्रीति से पहचान कर अनुभव करने से तुझे अपूर्व वचनातीत सुख का अनुभव होगा, तुझे स्वसंवेदन से उसका ज्ञान हो जायेगा। इस चैतन्यपद के सिवाय और सभी रागादि विभाव तो अपद हैं .... अपद हैं .... वे तेरे पद नहीं हैं। तेरा पद तो शुद्ध चैतन्यस्वभाव से सुशोभित हो रहा है, तू इस तरफ आ... आ। इसप्रकार सन्त तुझे स्व-घर में आने के लिए पुकार रहे हैं। स्व-घर छोड़कर पर-घर में भटकना चैतन्य भगवान को शोभा नहीं देता।

भवभ्रमण के भयंकर दावानल से आत्मा को बाहर निकालने के लिए हे जीव ! तू चैतन्य के शान्त निर्विकल्प रस का पान कर। अपने आनन्दमय निजपद को एक क्षण भी मत भूल और विषय-कषायों में एक क्षण के लिए भी मत रच। इस पर-पद में तुझे शान्ति का एक कण भी नहीं मिलेगा। तेरा निजपद अतीन्द्रिय चैतन्यसुख से सुशोभित हो रहा हैं, तो भी तू पर-पद के मोह से दुःखी हो रहा है। राग की आग में तू क्यों जल रहा है ?

'राग' अर्थात् चैतन्य से विरुद्ध सभी भाव पर-पद हैं, आग जैसे हैं, उनमें सुख, शान्ति या आनन्द नहीं है। अंदर में सुन्दर मजेदार आनन्दमय स्व-पद है, उसे देखो रे देखो, प्रमाद छोड़कर अन्दर परमात्मा को देखो और सुखी होओ। अभी तुम्हारे हाथ में उत्तम दाँव है, हित का सुन्दर अवसर है, यह दाँव मत चूको।

हे जीव ! अबतक अज्ञान और कषायों से दुःख का वेदन तूने ही किया है और उन्हें छोड़कर सम्यग्दर्शन द्वारा स्वभाव की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपूर्व शान्ति का वेदन तू ही कर। बंध मार्ग या मोक्षमार्ग में जीव स्वयं अकेला ही है, उसे डुबानेवाला या तारनेवाला दूसरा कोई नहीं है। स्वयं अपनी पर्याय की दिशा पलटाकर निज घर में आना तेरे अपने हाथ की बात नहीं है, यह पुद्गल कर्म के या दूसरे के हाथ की बात नहीं है। अरे स्वयं दोष करे और दूसरों के माथे डाले तो दोष से कब छूटेगा ? तू सम्यग्दर्शन कर मिथ्यात्व कर्म उसी समय टल जाएगा, वह तुझे सम्यग्दर्शन में आड़े नहीं आयेगा। अरे ! तू स्वयं शान्ति का महासमुद्र है और पानी में डूबी रहने पर भी प्यासी मछली की भाँति बाहर शान्ति की खोज कर रहा है – यह बड़े खेद की बात है। तू व्यर्थ ही दुःखी हो रहा है, इसलिए अपने निज चैतन्य घर में आ, तेरा निजघर यहीं है, यहीं है। तेरा निजघर तुझसे दूर नहीं है। अन्दर आते ही तुझे ऐसा लगेगा कि "अहो, मेरा स्व-घर ऐसा अद्भुत आश्चर्यकारी है, अभी तक मैं अपने घर में क्यों नहीं आया और पर-घर में क्यों मोहित हुआ" ?

पण्डित दौलतराम जी ने एक भजन में भी यही बात लिखी है –

हम तो कबहुँ न निज घर आए।
पर घर फिरत बहुत दिन बीते नाम अनेक धराए।।

अभी तक तो अज्ञान से पर-घर में विभाव में भटकता-भटकता चारगति में हाथी, बन्दर, देव, दानव आदि अनेक नाम धराए, परन्तु अब एकरूप चैतन्यमय निजघर को जानकर मैं उसमें आया हूँ। मैंने अपने घर की आश्चर्यकारी अचिन्त्य चैतन्य दौलत देख ली। हे जीव ! तू भी निजघर में आने का यह अवसर मत चूक। स्व-घर में अन्तर्मुख होकर निज निधान का अनुभव करके शीघ्र आत्मकल्याण कर ले।

वीतराग-विज्ञान द्वारा अपना अपूर्व कल्याण करने का उत्तम

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अवसर पाकर तू आलस्य मत कर। साहस अर्थात् आत्मा को साधने का पुरुषार्थ कर, ज्ञाता-दृष्टा आनन्दमय निजस्वरूप को शीघ्र जान और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रकट करके आत्मा को मोक्षपद की साधना में जोड़ – ऐसी उत्तम शिक्षापूर्वक यह शास्त्र पूर्ण होता है।

उपसंहार

(ग्रन्थरचना का आधार और समय)

इक-नव-वसु-इक वर्ष की तीज शुक्ल वैशाख,
कर्यो तत्त्व उपदेश यह लखि बुधजन की भाख।
लघु-धी तथा प्रमादतैं शब्द-अर्थ की भूल,
सुधी सुधार पढ़ो सदा जो पावो भवकूल।।

पण्डित श्री बुधजनजी ने भी छहढाला की रचना की है, जो सं. १८५६ में वैशाख सुदी तीज को पूर्ण हुई है। उसमें अन्त में उन्होंने लिखा है –

समकित सहज स्वभाव आपका अनुभव करना,
या बिन जप-तप वृथा कष्ट के माहीं पड़ना;
कोटि बात की बात रे 'बुधजन' उर धरना,
मन-वच-तन शुचि होय गहो जिनमत का शरना।।

पण्डित बुधजनजी के द्वारा छहढाला ग्रन्थ पूर्ण करने के ठीक ३२ वर्ष बाद संवत् १८११ को वैशाख सुदी तीज को पण्डित दौलतरामजी ने उक्त छहढाला के आधार पर इस छहढाला की रचना करते हुए वीतराग-विज्ञान का उपदेश दिया है। अन्त में विनयपूर्वक शिक्षा देते हैं कि बुद्धि की अल्पता या असावधानीरूप प्रमाद के कारण इस ग्रन्थ में शब्द या अर्थ संबंधी भूल रह गई हो तो बुद्धिमान साधर्मीजन उसे सुधारकर सदा पढ़ें, जिससे उन्हें भव समुद्र का किनारा मिल जाए।

❑❑❑

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com